# महाराष्ट्र-केसरी

इस किताब के मालिक पी. एन. वेङ्कयचार जी हैं

लेखक—

**पण्डित ताराचरण अग्निहोत्री बी० ए०**

सम्पादक—

**श्यामाचरण राय एम० ए०**

**एम० आर० ए० एस०, एफ० आर० ई० एस०**

प्रकाशक—

रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, आगरा

मूल्य १।)

# विषय-सूची

## प्रथम परिच्छेद

# भौगोलिक वृत्तान्त

प्रकृति ने भारतभूमि को विंध्याचल पर्वत द्वारा दो बड़े भागों में विभाजित किया है। भारतवर्ष का वह भाग, जो विन्ध्याचल के दक्षिण में है दक्षिणी हिन्दुस्तान कहलाता है, और हिमालय से लेकर विन्ध्य पर्य्यन्त देश, 'आर्य्यावर्त्त' अथवा 'उत्तरी हिन्दुस्तान' के नाम से पुकारा जाता है। दक्षिणी हिन्दुस्तान के वक्षःस्थल पर नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी आदि अनेक नदियाँ कलोल करती हैं। उसके उत्तर में गहन विन्ध्याचल, दक्षिण में विशाल हिन्द महासागर, पूर्व में पूर्वी घाट और पश्चिम में पश्चिमी घाट हैं।

दक्षिण का अन्तर्देश भी कतिपय स्वाभाविक भागों में विभक्त है। इस का वह भाग, जो 'पश्चिमी घाट' में स्थित है 'कोकण' के नाम से प्रसिद्ध है। अनन्त-जल-राशि-शोभा-पूर्ण अरब-समुद्र का पूर्वी तट इसका पश्चिमी किनारा है। पश्चिमी घाट की गगनस्पर्शी पर्वत श्रेणी कोकण को द्वितीय स्वाभाविक उप-विभाग अर्थात् 'महाराष्ट्र' से भिन्न करती है। सतपुड़ा का वह भाग, जिसमें चादूर और बेतूल हैं, 'महाराष्ट्र' देश की उत्तरी सीमा को दृढ़ करता है। महाराष्ट्र की पूर्वी सीमा पर 'गोंडवाना' प्रदेश है। अब इस

देश का दक्षिणी भाग निज़ाम राज्य के अन्तर्गत है। महाराष्ट्र और बंगोपसागर से घिरा हुआ 'तैलंगदेश' है। कृष्णा नदी इसकी दक्षिणी सीमा है। कृष्णा से रामेश्वर तक प्रदेश का नाम 'द्राविड़' है। द्राविड से ऊपर की ओर कोकण तक कर्नाटक प्रदेश है।

इस प्रदेश की मुख्य नदियाँ नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा हैं। नर्मदा अमरकंटक से निकल कर इसकी उत्तरी सीमा पर बहती हुई अरब समुद्र में गिरती है। ताप्ती सतपुड़ा से निकल कर इसके समानान्तर बहती है। गोदावरी, कृष्णा और कावेरी पश्चिम से पूर्व को बहती हुई बंगाल समुद्र में गिरती हैं।

दक्षिण देश की समस्त भूमि समतल नहीं है। विन्ध्याचल से रामेश्वर तक की यात्रा करने वाला पथिक इन पर्वती नदियों की तरंगों का आनन्द लूट सकता है। प्रकृति ने इस देश की पर्वत-मालाओं की रचना ऐसी की है, कि सहसा कोई शत्रु देश पर आक्रमण नहीं कर सकता है। इतिहास पर दृष्टि डालने से इस बात का पता चलता है, कि यदि उत्तरी भारत में बीस विदेशी आक्रमण हुए हों, तो कदाचित् इस देश पर आक्रमणकारियों की संख्या पाँच से अधिक न पहुँचेगी। महाराष्ट्र तथा कोकण देश उन नैसर्गिक लाभों से ओत प्रोत हैं, जिन से गङ्गा और सिन्धु प्रदेश वञ्चित हैं। विंध्याचल और सतपुड़ा 'दक्षिणी हिन्दुस्तान' की उत्तरी हिन्दुस्तान से उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जिस प्रकार हिमालय उत्तरी भारत को मध्य एशिया से सुरक्षित रखता है। महाराष्ट्र और कोकण देश पश्चिमी घाट और

सतपुड़ा की दुर्भेद्य पर्वत-मालाओं के उदर में स्थित हैं। इन पर्वतों की छोटी-छोटी शाखाएं जो चारों ओर फैली हुई हैं, गोदावरी आदिक नदियों के घूम घुमाव के कारण भूमि को घोर असमतल बनाती हैं। प्रकृति ने इन पर्वतों का निर्माण भी ऐसा किया है, कि इन पर उत्तमोत्तम और सुदृढ़ दुर्ग बन सके हैं, और समय पड़ने पर वे शत्रु से अधिकारियों की रक्षा कर सके हैं। कहीं-कहीं तो पर्वतों ने प्राकृतिक दुर्भेद्य दुर्ग-रचना की है। इसी कारण जिस राजा के राज्य के अन्तर्गत 'दक्षिण' का पर्वती प्रदेश रहा था वही समस्त देश का अधिपति बन सका था। इन पर्वतों का दर्शन पूना जाने वाले यात्री को अवश्य ही मिल जाता है।

उपर्युक्त कारणों से इस देश का जल-वायु भी अन्य प्रदेशों के जल-वायु से अच्छा है। उत्तर की तरह इस देश में असह्य सरदी या गरमी नहीं होती, अतएव यहाँ के निवासी बारहों मास आनन्द मनाते हैं। पहाड़ों के कारण भूमि अति उपजाऊ नहीं है, परन्तु वह ऊसर भी नहीं है। नदी-तटस्थ पृथ्वी अत्यन्त उपजाऊ है। इन प्रान्तों में बारह मास वसन्त ऋतु का अखण्ड राज्य रहता है। नैसर्गिक कारणों से यहाँ की जन संख्या घनी नहीं है, परन्तु कोकण प्रदेश में बस्ती बहुत घनी है। उद्दंड और कठोर प्रकृति की गोद में खेलनेवाले यूनान वासी जिस प्रकार असीम बलशाली हुए थे, ठीक उसी प्रकार मरहटे भी उन्नत हुए हैं। देश की स्वाभाविकता सर्वदा देशवासियों की उन्नति तथा अवनति का कारण हुआ करती है। इतिहास साक्षी है, कि पहाड़ी लोग बल-

वान्, धैर्य्यवान् तथा युद्धकुशल होते हैं। प्राचीन काल से आज तक जो राष्ट्र युद्ध में प्रख्यात हो सके हैं उनका आदिम मूल पहाड़ी देश ही है।

महाराष्ट्र देश में कोकण के समान विशाल पर्वत नहीं है, परन्तु यह पर्वती भू-भाग भी रमणीय है। यहाँ की भूमि हरित दूर्वा से लहलहाती है। यह भू-भाग पश्चिम से पूर्व की ओर ढालू है और इसका क्षेत्रफल प्रायः बारह लाख वर्ग मील है।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्रकृति ने इस देश का ऐसा सङ्गठन किया है, जिससे यहाँ के मनुष्य स्वतन्त्रता देवी के उपासक होवें। जिस समय आर्य्य जाति उत्तरी भारत में आई थी उस समय द्राविडों का बाहुल्य था। इतिहास सिद्ध करता है कि द्राविड़ों से आर्य्यों का भयङ्कर युद्ध हुआ, उसमें द्राविड पराजित हुए और वे दक्षिण में चले आये। आर्य्यों ने बहुत काल तक इनकी ओर पुनः दृष्टि न डाली, और वे स्वतन्त्रता पूर्वक दक्षिण में उन्नति करते रहे। पश्चात् आर्य्यों का आक्रमण 'दक्षिण' में हुआ, परन्तु इस बार वह भीषण शक्ति से न था। कारण यह था कि द्राविड़ जाति भी आर्यागमन-समय जैसी शक्तिहीन नहीं थी। इस बार दोनों में मैत्रीभाव स्थापित हो गया। एक ने दूसरे के गुणों को ग्रहण किया। इन दोनों के सम्मिलन ने जाति में एक नवीन जीवन पैदा कर दिया। उत्तरी भारत में जो संस्थाएं प्रायः अविज्ञात थीं वह दक्षिण में उत्पन्न हुईं। इन संस्थाओं में 'ग्राम संस्था' ने अति उन्नति की। इसी संस्था में प्रजातन्त्र का मूल था। दुर्भाग्यवश उस कोटि में यह

पूर्णतः उत्तीर्ण न हुई, परन्तु इसके द्वारा स्वतन्त्रता का बीज बढ़ता रहा। इसकी वृद्धि ने आधुनिक 'पंचायत' 'रैयतवारी' तथा 'मिरासी' आदि को जन्म दिया। आधुनिक स्थानिक स्वराज्य के बीज इसमें मौजूद थे। शिवाजी को इन संस्थाओं ने राज्य स्थापित करने में बहुत सहायता दी थी, क्योंकि इन संस्थाओं में ही मरहटाओं को एक सूत्र में बाँधने और उन्हें संगठित करने की पूरी शक्ति थी।

---

## द्वितीय परिच्छेद

# महाराष्ट्र में जागृति

प्रथम परिच्छेद में यह बात दिखलाई जा चुकी है, कि मरहटाओं में स्वतन्त्रता का बीज किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं बोया गया था, किन्तु यह उनमें चिरकाल से स्वाभाविक था। इतिहास से यह बात सिद्ध होती है कि महाराष्ट्र बहुत दिनों तक स्वतन्त्र रहा, परन्तु अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण-काल से लेकर शिवाजी के समय तक वह परतन्त्र रहा। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो उस परतन्त्र अवस्था में भी यह देश अन्य विजित देशों से अधिक स्वतन्त्रता धारण किये रहा, जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। जब इतिहास-वेत्ताओं ने महाराष्ट्र जाति का अभ्युदय शिवाजी द्वारा देखा, तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उनके आश्चर्य का कारण यह है, कि जो जाति सैकड़ों वर्षों से परतन्त्रता के क्रूर अत्याचारों को सह कर निर्बल हो गई थी, वह एक वृहत् राज्य को किस प्रकार पछाड़ कर स्वतन्त्र होगई। मरहटाओं का इतिहास लिखने वाले ग्राण्ट डफ़् तो इतना ही लिखकर रह गये, कि जिस प्रकार दवाग्नि हठात् उत्पन्न हो जाती है, और अपनी लपटों को सब दिशाओं में

प्रसरित कर देती है, ठीक उसी प्रकार महाराष्ट्र का अभ्युदय हुआ। परन्तु साहब बहादुर का यह मत युक्ति-संगत नहीं है। मरहटाओं का अभ्युदय कार्य-कारण से सम्बन्ध रखता है।

अन्य बड़े-बड़े इतिहासवेत्ताओं ने भी इस विषय पर ऐसी ही भूलें की हैं। उन्होंने यह लिखा है, कि जिस प्रकार एक लुटेरा अशान्त राज्यकाल पाकर हलचल मचा देता है, और कभी-कभी छोटा मोटा राज्य भी बना लेता है, शिवाजी की भी वही अवस्था थी। मुग़ल राज्य में अशान्ति थी, औरङ्गज़ेब के कारण दक्षिण के मुसलमान शासक शिथिल हो गये थे; अतएव ऐसी दशा में शिवाजी ने मौक़ा पाकर महाराष्ट्र-राज्य स्थापित किया। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह सिद्धान्त नितान्त निर्मूल और भ्रमात्मक है। राज्य स्थापन में शिवाजी का केवल उतना ही भाग है, जितना कि एकत्रित किये हुए तृणों को लेकर उनका रस्सा तैयार करने में किसी व्यक्ति का होता है। थोड़ी देर के लिये यदि हम मान लें कि शिवाजी लुटेरे थे, और लूट मार कर उन्होंने अपना राज्य बढ़ाया था, परन्तु इतिहास इस बात को सिद्ध नहीं कर सकता कि किसी लुटेरे ने ऐसे दृढ़ राज्य की नींव डाली हो, जो शताब्दियों तक स्वतन्त्र बना रहा हो। हैदरअली ने भी एक राज्य स्थापित किया था, परन्तु वह शीघ्र ही नष्ट हो गया। अलीवर्दीख़ाँ भी तो बङ्गाल का नवाब बन बैठा था, परन्तु उसका राज्य भी बहुत दिन न रहा। इन सबका कारण यह था कि ये राज्य एक व्यक्ति विशेष द्वारा स्थापित किये गये थे। उन

में सारी जाति का सहयोग न था। शिवाजी की भी यदि यही अवस्था होती, तो महाराष्ट्र-राज्य आज तक न रह सकता। शिवाजी के स्वर में सहस्रशः स्वर मिले हुए थे, शिवाजी के साथ सारा महाराष्ट्र था, उनके राज्य की नींव इसी से पक्की थी।

अब इस बात के दिखलाने का यत्न करना है, कि शिवाजी की उन्नति में कौन-कौन सी बातें अनुकूल हुईं। सब से पहली बात जो हम पहले लिख आये हैं, यह है कि मरहटाओं में स्वातन्त्र्य बीज मौजूद था। शिवाजी ने उसे सींच कर स्वतन्त्रता का एक विशाल वृक्ष खड़ा कर दिया। शिवाजी के उन्नति-पथ को सुगम करने के निमित्त यथायोग्य पुरुष उपस्थित थे। उनको जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी, वैसे ही कुशल पुरुष उन्हें सरलता से मिल जाते थे। इन सब के साथ ही साथ औरङ्गज़ेब की नीचता और क्रूरता ने स्वतन्त्रता की प्रचण्ड अग्नि में घी का काम किया। प्रत्येक समाज अपने पवित्र विचारों की रक्षा को अपना कर्त्तव्य समझता है। धर्म पर आघात करने वाले अत्याचारी का दुर्व्यवहार कौन सह सकता है? यवनोंने पहले ही वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था, परन्तु उन्होंने प्रचलित धर्म्म पर कभी आक्रमण नहीं किया, अतएव मरहटाओं की धार्मिक स्वतन्त्रता अब तक बनी रही थी। अब औरंगज़ेब के मज़हबी तास्सुब ने मरहटाओं के हृदयों को दग्ध कर दिया। जिन मनुष्यों के धर्म में चिरकाल से हस्तक्षेप नहीं हुआ था, उनको औरङ्गज़ेब का 'धर्म्म-कुठार' असह्य हो गया, और उनके हृदयों में क्रोधाग्नि

सुलगने लगी, जिसे शिवाजी ने विकराल ज्वाला के रूप में परिणत कर दिया।

शिवाजी को सब से अधिक सहायता देनेवाला ऐक्य-मन्त्र था। तत्कालीन इतिहास बतलाता है, कि उस समय जो धार्मिक शिक्षा प्रचलित हो रही थी, उसका मूल मन्त्र नीच जातियों से लेकर ब्राह्मण पर्य्यन्त सब को ऐक्य-सूत्र में बाँधना था। नीच जातियाँ भी शिक्षित होकर अपना धर्म समझने लगीं थीं। इन सब के नेता श्री समर्थ रामदास थे। शिवाजी के गुरु होने के सिवा, वे देश-गुरु भी थे, अतएव शिवाजी को इनके द्वारा राज्य-क़ायम करने में अतीव सहायता मिली थी। इन सब के साथ ही साथ उन प्रचलित संस्थाओं से शिवाजी को अतीव सहायता मिली, जिन से प्रत्येक मरहटे में वह शक्ति आ गई थी कि वह कठिन से कठिन कार्य सरलता से कर सकता था।

उपर्युक्त बातों पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है, कि शिवाजी की विजय के साधन का कारण लुटेरों का दल कदापि न था। शिवाजी के सहायक-राष्ट्र के वह भक्त नेता थे, जो अपने धर्म की रक्षा के हेतु राष्ट्र को स्वतन्त्र बनाना चाहते थे। यही कारण है कि शिवाजी एक चिरस्थायी राज्य की नींव डाल सके। १६ वीं शताब्दि में मरहटाओं की जागृति आकस्मिक घटना नहीं है। उसका सम्बन्ध कार्य-कारण से है। उस समय इस परिवर्त्तन की गति रुक नहीं सकती थी, इसलिए यह परिवर्त्तन हुआ। अब यहाँ पर इस बात के बतलाने की आवश्यकता है, कि जिस समय

शिवाजी ने अपने राज्य-स्थापन का यत्न प्रारम्भ किया, उस समय दक्षिण की क्या अवस्था थी, और वह अवस्था क्यों हुई ?

१६ वीं शताब्दि के प्रथम-चतुर्थांश में दक्षिण में गोलकुण्डा, बीजापुर, अहमदनगर और मुग़लों का राज्य था। इन सब का थोड़ा-थोड़ा इतिहास वर्णन करने के लिए हमको कुछ समय पूर्व की ओर जाना पड़ता है। दक्षिण में प्रथम यवन-आक्रमण अलाउद्दीन खिलजी द्वारा हुआ। सन् १२६४ ईसवी में यह कारा से दक्षिण की ओर चल पड़ा। दक्षिण पर इसने क्यों आक्रमण किया ? इतिहास इसका उत्तर देने में असमर्थ है। वह इतना बतला कर चुप हो जाता है, कि अलाउद्दीन द्वितीय सिकन्दर बनने की हार्दिक इच्छा रखता था। राजनीति विशारद होने के कारण उसकी दृष्टि दक्षिण ही पर पड़ी। कारण यह है, कि वहाँ के देशी राज्यों में अनबन थी। राजवंश निरन्तर युद्ध के कारण प्रायः निर्बल और शिथिल हो गये थे। ऐसा अनुकूल समय पाकर वह आठ सहस्र अश्वारोही सैन्य लेकर एलिचपुर होता हुआ देवगिरि के सम्मुख जा पहुँचा। रास्ते में यदि किसी ने पूछा तो यह उत्तर दिया कि चाचा साहब द्वारा निर्वासित होकर मैं राजमहेन्द्री-नरेश की शरण में जा रहा हूँ। देवगिरि-नरेश रामदेव ने भी उसकी कुटिलनीति के चंगुल में फँसकर कई शताब्दियों के लिये यवनों को दक्षिण का स्वामी बना दिया। अलाउद्दीन रामदेव को पराजित कर दिल्ली की ओर लौट पड़ा, और वहाँ आकर अपने चचा जलालुद्दीन को मारकर वह दिल्लीश्वर हुआ।

इधर स्वतन्त्रता-सेवी यादवराज भी शत्रु को दूर गया देख पुनः स्वतन्त्र हो गये, परन्तु भगवान् की ऐसी इच्छा न थी। अलाउद्दीन ने दिल्लीश्वर होने के पश्चात् दक्षिण को विजय करने का पक्का इरादा कर लिया। चूंकि रामदेव ने कर देना बन्द कर दिया था। इसी का बहाना लेकर अलाउद्दीन ने मलिक काफ़ूर को दक्षिण विजय-निमित्त भेजा। मालवा और खानदेश होता हुआ मलिक काफ़ूर देवगिरि जा पहुँचा। उसके पहुँचते ही हिन्दू-सूर्य राहुग्रस्त हो गया। सन् १३०३–४ में देवगिरि का पुनः पतन हुआ। इसके उपरान्त मलिक काफ़ूर तैलंग देश में पहुँचा, परन्तु वहां उसका मनोरथ सिद्ध न हुआ। लौटते समय उसने वारंगल दुर्ग को विजय कर वहाँ के राजा को अपने अधीन किया। सन् १३१० ई० में उसने बल्लाल-नरेश को राजगद्दी से उतार दिया। उसका वंशोच्छेदन कर वह रामेश्वर पहुँचा। वहाँ उसने एक मसजिद बनवाई। उसके उपरान्त वह दिल्ली लौट गया। सन् १३१८-१९ ई० में उसने देवगिरि पर पुनः चढ़ाई की, और इस बार उसने देवगिरि तथा तैलंग प्रदेश को पठान-साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार पठानों ने लगभग २५ वर्ष में रामेश्वर से विन्ध्य पर्य्यन्त पठान-विजय की ध्वजा फहरा दी।

यह सब हुआ किन्तु स्वतन्त्रता का बीज शीघ्र नष्ट नहीं होता है। हरपालदेव ने पुनः स्वतन्त्रता स्थापित की, परन्तु यह स्वतन्त्रता अल्पकालिक थी। पठानों ने पुनः आक्रमण कर

हिन्दुओं की स्वतन्त्रता छीन ली। इसके पश्चात् दिल्ली-साम्राज्य में परिवर्त्तन हुआ और विक्षिप्त सम्राट् मुहम्मद तुग़लक का समय आया। इस तुग़लक के समय तक दक्षिण एक प्रकार से स्वतन्त्र था। नर-आखेटप्रिय सम्राट् तुग़लक ने दिल्ली के बदले दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाने का विचार किया। राजनैतिक कारणों से यह विचार प्रशंसनीय था, परन्तु कई कारणों से बादशाह अपनी स्कीम में सफल नहीं हुआ, और उस पर अमल करने से उसे बहुत हानि उठानी पड़ी। धन-जन की हानि के अतिरिक्त वह दक्षिण देश को भी सदा के लिए खो बैठा। इसकी क्रूरता ने विजयनगर तथा बहमनी-राज्यों को जन्म दिया। विजयनगर का वृहत् राज्य हिन्दुओं की स्वतन्त्रता के बीज का अंकुर था।

चौदहवीं शताब्दि के मध्यकाल में दक्षिण में केवल दो बड़े राज्य थे। "दक्षिण" के दक्षिण में हिन्दू राज्य विजयनगर था और उसके उत्तर में बहमनी राज्य। थोड़े दिनों के बाद इन दोनों राज्यों में वैमनस्य हो गया, जिसका फल यह हुआ कि बहमनी-राज्य स्वतः ही पांच भागों में विभक्त हो गया, और विजयनगर सन् १५६५ ई० में रसातल को चला गया। विजयनगर के पतन ने इन नवीन पांचों राज्यों की शक्ति को बढ़ा दिया था। इसके पश्चात् मुग़लों ने दक्षिण में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया, और अन्त को औरङ्गज़ेब ने सत्रहवीं शताब्दि के अन्त में दक्षिण के यवन-राज्यों का अस्तित्व मिटा दिया। अब यह प्रश्न उपस्थित

होता है, कि इन चार शताब्दियों में मरहटाओं की क्या अवस्था थी, और शिवाजी ने उनको तथा यवन-राज्यों को किस अवस्था में पाया कि जिससे उन्होंने हिन्दू राज्य का पुनरुत्थान किया ?

यवनों ने यद्यपि दक्षिण को पराधीनता के बन्धन में बाँध दिया था, परन्तु उन्होंने वहाँ किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया था। यवन यहाँ अत्याचार करते, परन्तु कतिपय कारणों से उनको अपना हाथ रोकना पड़ा। उत्तरी भारत के यवनों को नवीन बलवान् यवन पश्चिम से मिल जाते थे, परन्तु दक्षिण के यवनों को यह सुविधा कहाँ थी ? यहाँ जो कुछ मुसलमान बस गये थे, उनके वंशजों को छोड़ अन्य नवीन आगन्तुक नहीं थे, अतएव समय-चक्र से उनमें महान् परिवर्त्तन हो गया। सहवास के कारण उनमें धार्मिक पक्षपात अत्यन्त स्वल्प रह गया। हिन्दुओं के निरन्तर सम्पर्क के कारण उनके भाव बहुत ही बदल गये।

यवन-आक्रमणकारियों के साथ सब युद्धप्रिय योद्धा थे। शासन कार्य्य के लिए उनके साथ मंत्रिमण्डल न था, अतएव राज्य-कार्य्य बहुत कुछ मरहटाओं के हाथ में आ गया। यवन-राज्य यहाँ जितना प्राचीन होता गया, मरहटाओं का उतना ही हाथ राज्य-संचालन में बढ़ता गया। बहमनी राज्य के कर्म्मचारी दिल्ली से आते थे, और वे प्रायः ब्राह्मण और खत्री होते थे। इन्होंने इस देश के निवासियों को कार्य्य कुशल देखकर उनको राज्य-कार्य में लेना आरम्भ किया। कुछ समय पश्चात् उत्तर से हाकिमों का आना कम हुआ, अतः मरहटाओं की इस विभाग

में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। यहाँ तक कि जब बहमनी राज्य पाँच भागों में विभक्त हो गया, तो समस्त कार्य्य इनके हाथों में आ गया। इस समय के पूर्व जो कुछ काम फ़ारसी अथवा उर्दू में होता था अब देशी भाषा में होने लगा। मरहटाओं और यवनों का सम्बन्ध प्रतिदिन घनिष्ठ होने लगा। सेना में भी मरहटाओं ने प्रवेश करना प्रारम्भ किया, और अल्प काल ही में अपनी वीरता के द्वारा उन्होंने यवनों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया।

विषय लोलुप यवन इस प्रकार बहुत से कार्य्यों को मरहटाओं पर छोड़कर विलासिता के समुद्र में गोते लगाने लगे। उन्होंने मरहटाओं को पाकर निरीक्षण-कार्य्य के अतिरिक्त अन्य सब कामों से अपना हाथ हटा लिया। बाहरी दशा तो यह थी ही, भीतरी दशा में भी घोर परिवर्त्तन हो रहा था। हिन्दू बालाओं को अपने 'हरम' में लेकर कामान्ध यवन एक प्रकार से उनके अनुचर होने लगे। हिन्दू भावोन्नति में इसने सहायता प्रदान कर मरहटाओं की शक्ति की वृद्धि विशेष रूप से की। हिन्दू, जो कि भिन्न-भिन्न कारणों से स्वधर्म-पथ त्याग कर यवन हो गये थे, अन्त को हिन्दू वीर्य्य ही से उत्पन्न हुए थे, हिन्दू-रक्त उनकी नस नस में बह रहा था; अतएव उनके भाव अन्त को हिन्दुओं की ओर झुकते थे।

इन सब बातों के कारण दक्षिणी यवन औरङ्गज़ेबी यवन नहीं रहे थे। महलों में, दरबार में, राज्य संचालन में, सेना में, सर्वत्र हिन्दू-भाव व्याप्त हो रहे थे। जिधर देखो उधर हिन्दू ही

हिन्दू दृष्टिगोचर होते थे। इस समय में मरहटाओं ने इतनी उन्नति कर ली थी, कि वे मंत्रित्व पद भी प्राप्त करने लगे थे। पर-राष्ट्र विभाग में हिन्दू ही काम करते थे। जिस समय शिवाजी का मुग़लों से युद्ध छिड़ गया था, उस समय गोलकुण्डा में मदन्न पण्डित मन्त्री थे। उन्होंने मुग़लों के विरुद्ध शिवाजी की गोल-कुण्डा से सन्धि कराई थी। वधजी जगदेवराज तो अपने समय के हुसेनअली थे। बह्मनी सम्राटों ने एक मरहटा प्रिटोरियन गार्ड तैयार किया था, जिसका उल्लेख स्वयं फ़रिश्ता ने किया है। उपर्युक्त घटनाओं से यह निर्णय होता है, कि यवन-बल प्रतिदिन हीन होता जाता था, और महाराष्ट्र-प्रभुत्व दिन और रात बढ़ता जाता था।

शिवाजी की उत्पत्ति के पूर्व से ही मरहटे कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हो रहे थे। इनके आठ वंश उस समय शक्तिशाली हो कर यवन-राज्यों के स्तम्भ स्वरूप थे। इन आठों में महान् शक्ति-शाली सिंधखेड़ के यादव थे। इन लोगों का वंशानुक्रम देवगिरि के यादवों से था। बरार राज्य में इस वंश ने अत्यन्त ख्याति प्राप्त की थी। जिस समय मुग़लों ने दक्षिण पर आक्रमण किया था, उस समय उन्होंने लुकजी यादव की सहायता ली थी। फुलटन के निम्बालकर भी इनसे कुछ पीछे न थे। बीजापुर-दरबार में माल-वादी के झुंझराव एक परम प्रतिष्ठित योद्धा थे। मोहती और गुर्जरों ने तो वह आशातीत उन्नति की थी, कि वे बीस सहस्र सैन्य के नायक हो गये थे। अहमदनगर के राज्य में भोंसला वंश भी इस

उन्नति की दौड़ में अग्रसर होने का पूर्ण यत्न कर रहा था, और साथ ही साथ सफलता भी प्राप्त कर रहा था। मोरे, शिकारी, और महादिखी भी इन सब के समान गिने जाने के योग्य थे।

मरहटाओं की इस पदानुक्रम-उन्नति ने यवन-राज्य की कुञ्जी इनको दे दी। घाटमाला के पहाड़ी क़िले मरहटे जागीरदारों के अधिकार में आ गये थे। इन दुर्गों की रक्षा हिन्दू सैनिकों और हिन्दू सेना नायकों द्वारा होती थी, तथा इनका प्रबन्ध भी हिन्दू शासकों द्वारा होता था। इस प्रकार यवनों की शक्ति आन्तरिक भाव से जीर्ण शीर्ण हो गई थी। शिवाजी इन समस्त व्यवस्थाओं से अपरिचित नहीं थे। उन्होंने मूल में कुठार मार कर जीर्ण वृक्ष को भूतलशायी किया और उसके स्थान पर एक नवीन बीज बोया, जो अंकुरित होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में लहलहाने लगा, परन्तु हा! कालचक्र ने उसे भी नष्ट कर मिट्टी में मिला दिया।

---

## तृतीय परिच्छेद

# वंश-परिचय

इतिहास पढ़नेवालों को पूर्णतया ज्ञात है, कि किसी समय भारतवर्ष मुसलमानों द्वारा पूर्ण रूप से पद-दलित हो गया था। हिन्दू-जाति का प्रतिदिन अधःपतन हो रहा था। पुरातन भारतीय गौरव नष्ट होता जाता था। हिन्दू राजा भी नैराश्य सागर में निमग्न हो रहे थे। अकबर की सर्व-ग्रासी कुटिल नीति के जाल में फँसकर राजस्थान के राजपूत नरेश स्वतन्त्रता को तिलाञ्जलि दे चुके थे, और मुग़ल बादशाह के इशारे पर कठपुतली की तरह नाचते थे। सूर्यवंशी होने का गर्व रखनेवाले आमेराधिपति और मारवाड़ नरेश भी मुग़ल सेनानी बन गये थे। बेचारे बीकानेर के पृथ्वीराज भी मुग़ल-बन्धन में पड़े तड़प रहे थे। परन्तु धन्य है कालचक्र को कि औरङ्गज़ेब को दिल्लीश्वर बनाकर भारत का उद्धार कराया। भारत में प्रबल परिवर्त्तन हुआ। परिवर्त्तन-वह्नि प्रथम दक्षिण में धधकी। अग्नि प्रज्वालक प्रातःस्मरणीय क्षत्रिय-कुल-तिलक छत्रपति शिवाजी भोंसले थे।

परिवर्त्तन प्रथम दक्षिण में ही क्यों हुआ? इसका कारण क्या था? उत्तरी भारत में परिवर्त्तन न होकर दक्षिण में इस

कारण हुआ कि यहाँ के मनुष्यों की इतनी पतित अवस्था न थी। उत्तरवासियों पर धार्मिक अत्याचार तेरहवीं शताब्दि से होने लगा था। प्रथम उन्होंने भी अत्याचार के विरोध में सिर उठाया, परन्तु ऐक्यसूत्र न होने के कारण उनके मनोरथ की सिद्धि न हुई। बारम्बार के आक्रमणों ने उनकी शक्ति शिथिल कर दी। राजपूताने के वीर क्षत्रियों ने स्वतन्त्रता के लिए अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उन्हें सफलता कैसे प्राप्त हो सकती थी? भीतरी द्वेष ने उनका सर्वनाश किया। हल्दीघाटी के युद्ध में एक भीम चेष्टा हुई थी, परन्तु वहाँ भी कुछ न हुआ। बारम्बार की असफलता ने उत्तरी हिन्दुओं को निस्तेज कर दिया। दक्षिण की यह अवस्था न थी। न तो वहाँ इतने आक्रमण हुए, और न वहाँ उत्तर की तरह नादिरशाही अत्याचार ही हुआ। मरहटाओं पर जब अकस्मात् घोर अत्याचार हुआ, और उनकी स्वतन्त्रता को धक्का लगने लगा; तो वे किटकिटाकर उठ बैठे, और यवन राज्य को ऐसा सांघातिक धक्का दिया, कि वह गिरकर पुनः न उठ सका।

हम पीछे लिख आये हैं कि दक्षिण के यवन राज्यों में आठ महाराष्ट्री वंश शक्तिशाली थे। उनमें से एक भोंसला वंश भी था। उस भोंसला वंश का इतिहास उल्लेखनीय है। कारण यह है कि शिवाजी भोंसला-कुल-भूषण थे।

ऐतिहासिक लोकोक्ति है, कि प्राचीन दक्षिणी राज्यों के नष्ट-भ्रष्ट करने के निमत्त एक सूर्य्यवंशी क्षत्रियकुमार ने यहाँ पदार्पण किया था। यह राजकुमार कौशलवंशी था। कुमार ने दक्षिण में

आकर सूर्य्यवंशी राज्य की नींव डाली, और उसने बहुत काल तक अकण्टक राज्य किया। इसके उपरान्त महाराज शालिवाहन ने दक्षिण पर आक्रमण किया। उसकी अत्याचारी सेना ने दक्षिण में हाहाकार मचवा दिया। एक के बाद दूसरे राजकुल विलीन होने लगे। दक्षिणी कौशलवंश का भी शालिवाहन द्वारा पतन हुआ। शालिवाहन ने बच्चे, जवान, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सबको तलवार की धार उतार दिया। गर्भवती रानी पुष्पावती ने येन केन प्रकारेण अपने प्राणों को बचाकर अर्बली की कन्दराओं में आश्रय लिया। यहीं सीसोदिया वंश के पूर्वज राजा गुह (केशवादित्य) का जन्म हुआ।

राजा गुह का पूर्व वंश-वृत्तान्त ऐतिहासिक घटना प्रतीत नहीं होती है। उपर्युक्त घटना केवल दन्त कथा के आधार पर आश्रित है। परन्तु अर्वाचीन इतिहासज्ञों का मत है, कि लोकोक्तियों से ऐतिहासिक परिणाम निकाला जा सकता है। इस जनोक्ति से यह सार निकलता है, कि मगधराज्य के अभ्युदय के समय कौशल राज्य का पराभव हुआ था। यह एक ऐतिहासिक घटना है। पराभव असह्य समझकर तद्वंशीय कोई राजकुमार राज्य-स्थापन निमित्त कौशल देश छोड़ दक्षिण में आया हो, और यहाँ छोटे-मोटे राज्य की नींव डाली हो जिसको शालिवाहन ने नष्ट किया हो। अब यहाँ एक नई अड़चन आती है। इतिहास में कोई शालिवाहन नामक ऐतिहासिक पुरुष नहीं हुआ है। तब यह शालिवाहन कौन था? डाक्टर भण्डारकर ने इस विषय

को सिद्ध किया है, कि अन्ध्रभृत्यवंश नरेशों की उपाधि शातिवाहन थी, और प्राकृत व्याकरण द्वारा शातिवाहन शालिवाहन हो सकता है, अतएव यह शालिवाहन अन्ध्रभृत्य वंशीय था। इस वंश के दक्षिण पर कतिपय आक्रमण हुए थे, परन्तु यहाँ पर यह सिद्ध करना कठिन है, कि अन्ध्रभृत्यों में ऐसा कौन सम्राट् हुआ जिसने दक्षिण पर आक्रमण कर उस कौशल वंश का नाश किया।

अस्तु, यह प्रचलित कथा केवल प्रलाप नहीं है। इसमें कुछ ऐतिहासिक सार है जिसका सम्बन्ध सीसोदया वंश से है। अब राजस्थान के इतिहास पर दृष्टि डालिये। पठानों के समय में इस वंश में शिवरामजी हुए। इनके तीन पुत्र थे। मुसलमानों के अत्याचारों से दो पुत्र वीरगति को प्राप्त हुए। कनिष्ठ भीमसिंह पिता के पश्चात् सिंहासनार्सीन हुए। इनके बाद इनके पुत्र विजय-भानु असीम पराक्रमशाली राजा हुए। इन्होंने प्रायः अपना समस्त जीवन यवनों के साथ युद्ध करने में ही व्यतीत किया। विजयभानु की मृत्यु के पश्चात् कर्णखेल सिंहासन पर बैठे। इस नये राजा के समय में मुसलमानों के अनेकानेक आक्रमण हुए। निरन्तर आक्रमणों के कारण कर्णखेल शिथिल और अशक्त हो गये। उन्हें राजस्थान छोड़ना पड़ा। राजपूताना सर्वदा के लिये छोड़ कर्णखेल दौलताबाद के निकटस्थ वेरुला नामक ग्राम के 'भोंसले' दुर्ग में जा बसे। तभी से इनके वंशज भोंसले कह-लाने लगे और क्रमशः भोंसला-कुल प्रतिष्ठित हुआ। कर्णखेल

के पुत्र जयकरण और उनके पुत्र महाकरण हुए। महाकरण शत्रुओं से युद्ध करते करते परमधाम सिधारे। महाकरण की मृत्यु से वेरुला ग्राम में बड़ी हलचल मच गई। प्यारे पुत्र शिवभीम ने पितृ-शोकाकुल हो अपने प्राण विसर्जन कर दिये। शम्भाजी इन्हीं के लड़के थे। इनका जन्म सन् १५३१ में हुआ था।

इस वंश का पूर्ण इतिहास दुष्प्राप्य है। नामों को छोड़ घटनाओं का वृत्तान्त बहुत ही कम मिलता है। जिस समय शम्भाजी का जन्म हुआ था, उस समय उनके पास नाममात्र के लिये तीन चार ग्राम थे। यही इनकी स्थावर सम्पत्ति थी। ये लोग सामान्यतया अपना समय व्यतीत किया करते थे। ये स्थापित-राज्य-शासन में कभी हस्तक्षेप नहीं करते थे। इनकी उपाधि इस समय पटैल थी। शम्भाजी भोंसले के दो पुत्र थे। बड़े का नाम मल्लजी था, और छोटे का विटोजी था। मल्लजी का जन्म सन् १५५२ ई० में हुआ था। मल्लजी का विवाह बाल्यावस्था में ही फुलटन के देशमुख वङ्गजी की भगिनी दीपबाई से हो गया था। कहते हैं कि शाह शरीफ़ नामक एक मुसलमान साधु के आशीर्वाद से मल्लजी को सन् १५६४ ई० में प्रथम पुत्ररत्न लाभ हुआ। यवनानुभाव से पुत्र पाकर उन्होंने कृतज्ञता का परिचय दिया और उसका नाम शाहजी रक्खा। दैवकृपा से अल्पकाल में दीपबाई फिर गर्भवती हुईं और इस बार भी उनके पुत्र ही उत्पन्न हुआ। मल्लजी ने अपने दूसरे बेटे का नाम शरीफ़जी रक्खा। ज्येष्ठ शाहजी कालान्तर में प्रतापी शिवाजी के पूज्य पिता हुए।

## चतुर्थ परिच्छेद

# जन्म

शाहजी की बाल्यावस्था निरर्थक खेल कूद में व्यतीत न हुई। वे क्षात्र धर्मानुसार शस्त्रविद्यानुरागी हुए, और अल्पकाल में उन्होंने शस्त्रविद्या में अच्छी कुशलता प्राप्त कर ली। बालकपन से ही शाहजी कुशाग्र-बुद्धि थे। उनका शरीर सुन्दर और सुडौल था। चाल-ढाल में वे सामयिक शिक्षा का अनुकरण करते थे। इन दिनों लुकजी यादव बहुत उन्नति कर रहे थे। किसी किसी की राय है कि उस समय लुकजी के समान कोई भी धनी और बली न था। मुसलमान नरेशों में भी इनका मान था। इनके द्वारा अनेक मरहटे सरदारों ने उन्नति की थी। सन् १५६६ में जब शाहजी पाँच वर्ष के थे मल्लजी उनको लेकर लुकजी के यहाँ होली मनाने गये। यादवराव ने बालक शाहजी की वाक्पटुता और शारीरिक ओज देखकर परम प्रसन्नता प्रकट की और उसको अपनी गोद में बिठला लिया। इसी अन्तर में लुकजी की कन्या जीजीबाई वहाँ आ गई। यादवराव ने उसको भी एक ओर गोद में बिठला लिया। बालस्वभाव से दोनों प्रेमपूर्वक खेलने लगे। प्रेम का आधिक्य देख यादवराव परमानन्दित हुए, और

उन्होंने हँसते-हँसते कहा "जीजी ! तू इसके साथ विवाह् करेगी?" बालक-बालिका विवाह के मर्म्म को क्या जानें ? अतएव वे उसको हँसी की बात समझकर हँसने लगे, और हँसते-हँसते एक दूसरे का हाथ पकड़कर उठ बैठे। यादवराव ने विकसित मुख से कहा—'क्या ही सुन्दर जोड़ी है ?' उपस्थित सज्जनों के सम्मुख मल्लजी उठकर कहने लगे—"महाशयो! यादवराव विवाह सम्बन्ध दृढ़ कर रहे हैं, उनको अपनी बात पर अटल रहना चाहिये।" यादवराव के सिर पर वज्र गिरा। मल्लजी की बात सुनकर वे नितान्त घबरा गये, और उन्होंने सभा विसर्जित कर दी।

द्वितीय दिवस मल्लजी के यहाँ पुनः निमन्त्रण गया, परन्तु उन्होंने यह उत्तर भेजा, कि जब तक यादवराव शाहजी को जामाता बनाना स्वीकार नहीं करेंगे, हम उनका निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सकते हैं। यादवराव की स्त्री ने जब यह सुना, तो वह परम क्रोधित हुई। क्रोध का कारण यह था कि यादवराव अपने को राजवंशी समझते थे, और साथ ही साथ उस समय उनकी मानमर्य्यादा बहुत ही बढ़ी चढ़ी थी, अतएव उन्होंने अभिमान से सामान्य दशा के मल्लजी से सम्बन्ध करना अनुचित समझा। इसमें तनक भी सन्देह नहीं कि मल्लजी यादवराव के समस्त धन, बल और मान में कुछ भी न थे। राज्य-कार्य्यों में प्रवेश कर उन्होंने क्रमशः अपनी पदोन्नति की थी, परन्तु वह थे तो सिली-दार ही। अपरिमित धन-मान-युक्त यादवराव भला क्यों कर एक सामान्य सिलीदार के पुत्र को अपना जामाता बनाते ? मल्लजी

का निमन्त्रणोत्तर सर्वथा अपमान सूचक था। अतएव यादवराव की पत्नी ने ऐसे उत्तर की घोर निन्दा की, और मल्लजी को कहला भेजा कि "तुम स्वप्न में भी ऐसी कल्पना न करना।"

मल्लजी ऐसा उत्तर पाकर परम लज्जित हुए। अब उन्होंने विचार किया कि यादवराव यदि यादव वंशी हैं, तो मैं भी सूर्य्य-वंशी हूँ। बात केवल इतनी ही है, कि इस समय उनके पास असीम धन और बल है। धन ही के कारण तो वे मुझे तुच्छ समझ रहे हैं, तो आज से मैं धनोपार्जन अपने जीवन का उद्देश्य बनाता हूँ। अतुलित धन प्राप्त होने पर यादवराव मेरे समधी अवश्य होंगे, अतएव अब मैं धन-मन्त्र की साधना में शरीर अर्पित कर दूँगा। ऐसा दृढ़ विचार कर मल्लजी ने नौकरी छोड़ दी, और वह भवानी की आराधना में दत्तचित्त हुए। अकस्मात् इनको बहुत-सा धन प्राप्त हो गया। कहा जाता है कि यह धन जगज्जननी भवानी ने ही प्रदान किया था। स्वप्नावस्था में आविर्भूत हो धन-प्राप्ति के निमित्त आदेश दे भवानी ने एक बार यह भी कहा था, कि तेरे वंश को उज्ज्वल करने वाला शम्भु सदृश दीप्तिमान् बालक उत्पन्न होगा। उस गुणशाली पुत्र द्वारा हिन्दू-राष्ट्र-बालरवि एक बार पुनः उदय होगा। गो-ब्राह्मणों के शूल निर्मूल होंगे। उसके उत्थान से हिन्दू-भाग्य-गति पलट जायगी और उसके पश्चात् सत्ताईस हिन्दू राजा राज्य करेंगे। इतना कह देवी अन्तर्हित हो गई।

अस्तु, जो कुछ भी हो मल्लजी को प्रचुर धन मिल गया।

धन के कुछ भाग को धर्म-कार्य में व्यय कर, बचे हुए धन से उन्होंने मनुष्य और अश्व संग्रह करना आरम्भ किया। उनको अभी लुकजी का अपमान विस्मृत नहीं हुआ था। किसी न किसी प्रकार से उन्होंने यादवराव को नीचा दिखलाना चाहा। उनको अकस्मात् अवसर प्राप्त हो गया। प्रबल मुग़ल सम्राट् अकबरशाह दिल्ली के सिंहासन पर शोभायमान थे। मुग़लों का परम प्रचण्ड प्रताप इन्हीं के समय में समस्त भारत-भूमि में प्रसरित हुआ था। देशपति, नरपति और प्रजाधिपति अपनी स्वाधीनता के गौरव को दिल्लीश्वर को समर्पित करते जाते थे। केवल एक हिन्दू-कुल-तिलक बापारावल वंशोद्भव महाराणा प्रतापसिंह अपरिमित नर-रक्त-दान से मेवाड़ की स्वाधीनता रक्खे हुए थे। उत्तरी हिन्दुस्तान को अपने अधिकार में लाकर दक्षिण की ओर उसने दृष्टि डाली। अकबर ने इससे कुछ काल पूर्व, १५६२ ई० में, खानदेश का राज्य जीत लिया था, परन्तु व्यतिक्रमों से वह आगे पैर न बढ़ा सका। अकबर इस बात से भली भाँति परिचित था कि जो मनुष्य दक्षिण को वश में रखना चाहता है, उसको दक्षिण में ही राजधानी रखनी उचित है। राजपूताने को दबाये रखने के निमित्त उसने आगरे को राजधानी बनाया था, परन्तु उसके लिये दक्षिण में राजधानी बनाना कठिन था। कारण यह कि उसकी अनुपस्थित में राजपूताना हलचल मचा देता। दक्षिण की ओर पूर्णतया दृष्टि उसने तब डाली, जब राजपूताने को वशीभूत कर लिया। किसी किसी का यह मत है कि वह दक्षिण

में हस्तक्षेप करना नहीं चाहता था। अपनी सीमा दृढ़ करने के निमित्त उसने खानदेश को ले लिया था† परन्तु यह बात इतिहास-सिद्ध नहीं है। उत्तर के झगड़ों के कारण उसे दक्षिण में हस्तक्षेप करने का अवसर न मिला था। उनसे जैसे ही छुट्टी मिली उसने दक्षिण पर चढ़ाई की।

मुग़ल राज्य के दक्षिणी सूबे का सूबेदार शाहज़ादा मुराद बनाया गया। दक्षिण-विजय निमित्त भौगोलिक कारणों से मुग़लों को प्रथम अहमदनगर पर आक्रमण करना पड़ा।

इस समय अहमदनगर की आभ्यन्तरिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। विलास प्रियता के कारण नवाब का सर्वनाश हो रहा था। राज्यकोष द्रव्यहीन था, देश में धन और अन्न का पूर्ण अभाव था। सेना की दशा भी विचारणीय हो रही थी। ऐसी दुर्व्यवस्था में मुग़लों ने अहमदनगर पर आक्रमण किया। स्वल्प यत्न से अहमदनगर का पतन हुआ, और नवाब साहब इस दुनिया से चल बसे। एक बार मुग़लों का देश पर आधिपत्य हो गया। वीराङ्गना चांदबीबी मुग़ल साम्राज्य की वृद्धि कब सह सकती थी? वह मुग़लों के निकालने के लिए कटिबद्ध हुई। उमरावों की सहायता द्वारा उसने मुग़ल सेना को पराजित किया और मुग़लों को वहाँ से भगा दिया। स्त्री का यह भीम कर्म उमरावों को असह्य हुआ, और उन्होंने एक गुप्त मंत्रणा कर स्वदेश-भक्त वीराङ्गना का प्राण हरण कर लिया। इधर मुराद की मृत्यु के पश्चात्

† Lane-Poole : Aurangzeb p. 144

दानयाल दक्षिण का सूबेदार हुआ। मुग़लों ने अहमदनगर का पीछा न छोड़ा। इस बार स्वयं अकबरशाह दक्षिण में आये। दुर्धर्ष अकबर को अहमदनगर में चाँदबीबी की तरह कोई रोकने वाला न था। अतएव अहमदनगर का पतन हुआ, और नवाब बन्दी बना कर बुरहानपुर भेज दिए गये। परन्तु उनके वंशजों ने अधीनता स्वीकार न की और उन्होंने मलिक अम्बर की सहायता से प्राचीन निज़ामशाही वंश से एक बालक को लेकर जूनार को राजधानी बनाया।

उपर्युक्त युद्ध-समय में ही मल्लजी का भाग्योदय हुआ। उस कठिन समय को देखकर मल्लजी ने विचारा, कि यदि इस प्राप्त प्रभूत धन को उचित उपयोग में ला सकूँ तो कार्य-सिद्धि में विलम्ब नहीं। अहमदनगर की आन्तरिक अवस्था उनसे छिपी हुई नहीं थी। वे जानते थे कि नवाब को धन-जनकी परम आवश्यकता है, अतएव उन्होंने पाँच सहस्र अश्वारोही जमा कर नवाब को धन और जन से सहायता देने का विचार किया। गत युद्धों के कारण देश में घोर दुर्भिक्ष पड़ रहा था। केवल अन्न ही से नहीं, किन्तु जलाभाव से भी प्रजा अतीव कष्ट पा रही थी। जलाभाव को दूर करने के लिए मल्लजी ने इधर-उधर ग्रामों में कुएँ, बावड़ी, और तालाब बनवाये। इतना ही नहीं, उन्होंने देव-मन्दिरादि की भी प्रतिष्ठा की जिससे वह बहुत प्रसिद्ध हो गये। उनका नाम कुछ ही समय में देशव्याप्त हो गया। नवाब ने भी सामयिक सहायता से लाभ उठाकर परम प्रसन्नता प्रकट की। सहा-

यता के बदले में नवाब ने मल्लजी को चाकन और शिवनेर दुर्ग प्रदान किये, और जागीर में पूना और सूपा नामक ग्राम दे डाले। नवाब की कृपा का अन्त यहीं न हुआ, उन्होंने मल्लजी को 'राजा मल्लजी भोंसले' की उपाधि से भी विभूषित किया। राजा मल्लजी भोंसले अब उपाधिहीन, सामान्य और द्रव्यहीन सिलीदार नहीं थे। उनके अपरिमित धर्मार्थ दान के प्रचण्ड प्रकाश में यादवराव की ख्याति नक्षत्रवत् हो गई। ऐसा समय पाकर मल्लजी ने किसी प्रकार नवाब के कानों तक अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करवा दी। नवाब ने यादवराव को बुलाकर विवाह का अनुरोध किया, और लुकजी ने अब विवाह-सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार कर लिया। शुभ लग्न तथा मुहूर्त्त में महान् समारोह के साथ शाहजी का जीजीबाई के साथ सन १६०४ ई० में पाणिग्रहण हो गया।❀

सन् १६२० ई० में मल्लजी स्वर्गवासी हुए। शाहजी उत्तराधिकारी हुए। युद्ध-विद्या-कुशल शाहजी जागीर के कामों का सम्पादन भी पूर्ण दक्षता से करते थे। उनकी प्रजा सर्वदा उन से परम प्रसन्न रहती थी, और वे भी उसको सुखी रखने के लिए प्राणपण से चेष्टा करते थे। पूज्य पिता की मृत्यु के पीछे शाहजी भी अहमदनगर के सहायक रहे। अकबरशाह अब इस संसार में नहीं थे। उनके पुत्र जहाँगीर दिल्ली के सिंहासन को सुशोभित कर रहे थे। जहाँगीर ने सन् १६१६ ई० में शाहजहाँ को अहमदनगर विजय के लिये भेजा, परन्तु मलिक अम्बर और शाहजी के

❀ मराठा बखर।

कारण शाहजहाँ को कई बार पीछे हटना पड़ा❀। सन् १६२० ई० में पुनः घोर मुग़लाक्रमण हुआ। इस बार अहमदनगर की सहायता में निम्बालकर, लुकजी और शाहजी थे। युद्ध तो हुआ, परन्तु मुसलमानों की अदूर्दर्शिता के कारण अहमदनगर की पराजय हुई। लुकजी मुग़लों की ओर चले गये, और मलिक अम्बर को भी आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस युद्ध में महाराष्ट्र-सैन्य तथा शाहजी की बड़ी प्रशंसा हुई।

इसके पश्चात् मलिक अम्बर ने एक बार पुनः अहमदनगर राज्य-स्थापन की चेष्टा की थी, परन्तु सन् १६२६ ई० में + उसकी मृत्यु हो गई और उसकी आशा-लता फलित न हुई।

मलिक अम्बर की मृत्यु के एक वर्ष बाद शिवनेर दुर्ग में जीजीबाई के गर्भ से शिवाजी का जन्म हुआ।

---

❀ Vide Thomson History p. 178.

\+ टामसन के मत से यह मृत्यु सन् १६२१ ई० में हुई थी।

## पञ्चम परिच्छेद

# बाल्यकाल

उद्दण्ड यवनों के हस्तगत हुई भारतभूमि के पुनरुद्धार-कर्त्ता शिवाजी का जन्म शिवनेर नामक दुर्ग में संवत् १६८४ ( सन् १६२८ ई० ) के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष, द्वितीया, बृहस्पति वार को जीजीबाई के गर्भ से हुआ था।

जीजीबाई इस दुर्ग में बन्दी होकर दिन काटती थीं। हम गत परिच्छेद में लिख आये हैं, कि निज़ामशाही के पतन होने पर लुकजी मुग़लों की ओर चले गये थे। शाहजी धर्म्म-पथ का त्याग न कर अहमदनगर का पक्ष ग्रहण किये रहे। अहमदनगर के लिये यह समय बड़ा भयंकर था। चारों ओर घोर अशान्ति थी। रणचण्डी नर-रक्त से तृप्त न हो रही थी। जिधर देखो उधर ही युद्धानल प्रज्वलित हो रही थी। प्रायः ऐसा कोई दिवस नहीं जाता था, जिस दिन लड़ाई न होती हो। ऐसी अवस्था में ससुर व दामाद की मुडभेड़ अक्सर हो जाती थी। सन् १६२६ ई० में ससुर-दामाद का अच्छा ख़ासा सामना हो गया। शाहजी के साथ इस समय उनके ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी * और वीरपत्नी जीजीबाई थीं।

---

* शिवाजी के बड़े भाई का नाम शम्भाजी था। ये इनसे तीन चार वर्ष बड़े थे। इतिहास से शम्भाजी का सम्बन्ध घनिष्ठ नहीं है, अतएव इनका उल्लेख कम होगा।

जीजीबाई सात मास से गर्भवती थीं। सात मास का गर्भ और युद्धक्षेत्र के भीषण दुःख जीजी को चिन्ताग्रस्त किये हुए थे। शाहजी इस समय घोर सङ्कट में थे, परन्तु वे किञ्चिन्मात्र भी धर्म-पथ से विचलित न हुए। युद्ध हुआ और दुर्भाग्यवश शाहजी हारे। शाहजी के सैनिकों ने पीठ दिखाई। लुकजी ने तड़ितगति से शाहजी का पीछा किया। जीजीबाई अब संकट में थीं। ऊँचे नीचे कठिन पहाड़ी मार्गों को शीघ्रता से तै करना उनके लिए असम्भव था। उनके मुख पर विपत्ति के चिह्न प्रकट होने लगे। शाहजी ने देखा कि जीजी को लेकर आगे बढ़ना मनुष्य-शक्ति के बाहर है, तो उन्हें वहीं छोड़ देने का विचार किया। उन्होंने सोचा कि अन्त को लुकजी जीजी के पिता ही हैं, विपक्षदल के होने के कारण उनकी शत्रुता तो मुझ से है न कि जीजी से। वह तो उनकी ही पुत्री हैं, अतएव उनके हाथ में पड़ने से उन्हें कोई हानि नहीं पहुँच सकती है। पत्नी पर भी तद्विषयक विचार प्रकट कर उनको वहीं छोड़कर शीघ्रता से शाहजी निरापद स्थान पर पहुँच गये।

लुकजी सवेग वहाँ आगये जहाँ जीजीबाई कुछ विश्वस्त सैनिकों की रक्षा में थीं। पिता और पुत्री के सम्बन्ध को तिलाञ्जलि दे लुकजी ने उसको शत्रुपत्नी विचारा। लुकजी ने पितृस्नेह को विलुप्त किया और अपनी कन्या को बन्दी कर शिवनेर के दुर्ग में भेज दिया। शाहजी ने जब सुना कि जीजीबाई शिवनेर दुर्ग में हैं, तो उन्होंने यादवराव को लिखा, कि

वह जीजीबाई को स्वतन्त्र कर दें, परन्तु उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया*। जीजीबाई शिवनेर दुर्ग में बन्द रहीं और यहीं दो मास के बाद छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ। शिवनेर दुर्ग में शिवाई देवी का मन्दिर था। जीजीबाई बड़ी श्रद्धा से इसी देवी की पूजा में अपना समय बिताने लगीं। जीजीबाई पति और भविष्य-संतान की शुभकामना के लिए तन, मन से आराधना करती थीं। उनकी महती प्रार्थना यह थी "देवी! महावीर पुत्र को पैदा कर मैं वीरप्रसू बनू"। कहते हैं कि देवी ने प्रसन्न होकर जीजीबाई से स्वप्न में कहा—"पुत्री मैं तेरी भक्ति से परम प्रसन्न हूँ। तेरे गर्भ में भूभार उतारने के निमित्त देवाधिदेव भगवान् शिवजी ने शरीर धारण किया है। तेरा पुत्र गो-ब्राह्मण की रक्षा करते हुए शत्रु का नाश करेगा। वह महाराष्ट्र मेदिनी में हिन्दू-राज्य स्थापित कर अतुलित यश का भागी होगा। तू भी शिव माता होकर संसार में प्रसिद्ध होगी"। प्रफुल्लित जीजीबाई का स्वप्न भङ्ग हुआ, और यथा समय वाञ्छित पुत्ररत्न का जन्म हुआ। जिस पुत्र के प्रकाण्ड और प्रशस्त कर्म भूमण्डल के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से अङ्कित किये जाने के योग्य हैं, जिसने परम प्रतापी दुर्धर्ष यवनों के राज्य

---

* इस इनकार के दो कारण हो सकते हैं—प्रथम तो यह कि लुकजी मुग़ल सैन्य के सेनानी थे और जीजीबाई को उन्होंने युद्ध में बन्दी किया था; अतएव विना मुग़ल सम्राट् की आज्ञा के जीजीबाई को छोड़ देना अनुचित समझा हो, और इस प्रकार नमक हलाली का परिचय दिया हो। द्वितीय यह केवल ईर्ष्या का फल हो।

को छिन्न भिन्न कर रसातल पहुंचा दिया। जिस महाराष्ट्र केसरी ने भारतवर्ष में पूर्ण देश-भक्ति का स्रोत बहा दिया था, उस महापुरुष का नाम शिवाई देवी के आशीर्वाद से शिवाजी रक्खा गया।

इस समय दक्षिण की क्या अवस्था थी ? देशभक्त मलिक अम्बर इस क्षुद्र संसार में नहीं था। उसके स्थान पर उसका पुत्र फ़तहख़ाँ काम करने लगा था। निज़ामशाही नौका को लेकर विषम समय में वह केवट बना, परन्तु यह अपने पिता की तरह चतुर और कार्यदक्ष न था। ख़ाँजहाँ लोदी* निज़ामशाही को हड़प जाने का निरन्तर यत्न कर रहा था। सुलतान मुर्तज़ा जो अब तक अल्पवयस्क थे, उन्होंने पूर्णायु होकर राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। लुकजी यादव का विपक्ष में चला जाना उनको बुरा लगा था। उससे अधिक खटकनेवाली बात यह थी, कि विपक्ष में जाकर वह उस निज़ामशाही की जड़ काटने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा था, जिसने उसके निमित्त बहुत कुछ किया था। निदान उसने अब इस कृतघ्नता का प्रतिशोध करने का विचार किया। सन् १६३० ई० में उसने फ़तहख़ाँ को राजप्रतिनिधि-पद से अलग किया, और लुकजी को भुलावा देकर पद-प्रदान की प्रतिज्ञा से बुला भेजा। नवाब की भीतरी चाल को न समझ कर लुकजी वहाँ चले आये। वहीं गर्भवती पतिपरायणा पुत्री को क़ैद करने का प्रायश्चित्त हुआ। नवाब ने लुकजी को अपने पाशबन्ध में डाल उसके प्राण

---

* यह सेनापति मुग़लों की ओर से नियत किया गया था।

हरण किये। इस प्रकार शिवाजी के नाना का अन्त हुआ। यादवराव की पत्नी अपने प्राणों को बचाकर सिन्धखेर भाग गईं। इधर फ़तहख़ाँ ने मौक़ा पाकर नवाब को मार डाला।

उधर दिल्ली के सिंहासन पर जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ आसीन हुए। ख़ाँजहाँ (ख़ान-ए-जहाँ) लोदी सम्राट् जहाँगीर का कृपापात्र और स्वयं वीर होने के कारण दक्षिण * का सूबेदार नियुक्त किया गया था। परन्तु शाहजहाँ का इससे आन्तरिक वैमनस्य था। वह सर्वदा उसके पराभव की चेष्टा करता था, परन्तु जब तक जहाँगीर जीवित रहे, शाहजहाँ ख़ाँजहाँ (खान-ए-जहाँ) का बाल भी बाँका न कर सका। जैसे ही शाहजहाँ दिल्लीश्वर हुए उनकी वक्रदृष्टि लोदी की ओर फिरी। निस्सहाय लोदी इस समय क्या कर सकता था? शाहजहाँ ने उसे दक्षिण से हटा कर मालवा का सूबेदार बनाया और विशेष रूप से सम्मानित करते हुए उसको दिल्ली बुलाया। उच्चासनासीन कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई, परन्तु साथ ही साथ उसके प्राणापहरण की तरकीब सोची ×। न मालूम

---

* 'दक्षिण' शब्द का तात्पर्य यहाँ दक्षिण देश से नहीं है। दक्षिण का मतलब यही है कि दक्षिण देश का वह भाग जो मुग़ल राज्यान्तर्गत था अर्थात् ख़ानदेश का एक बड़ा भाग, बरार और अहमदनगर का दुर्ग। केवल यही मुग़लों का दक्षिणी सूबा था। ( लेनपूल )

× शाहजहाँ की प्रायः यह चाल हुआ करती थी, कि वह जिसके प्राण लिया चाहता था पहले उस पर अपनी असीम कृपा दिखलाता था और

खाँजहाँ के हृदय में क्या शक हुआ कि वह वहाँ से बिना कहे सुने भाग खड़ा हुआ। आत्मरक्षा-निमित्त उसने निज़ामशाही की शरण ली *। फ़तहखाँ के समय में निज़ामशाही का पूर्ण नाश जानकर शाहजी भी मुग़लों की ओर चलेगये थे +। परन्तु जब उन्होंने नवाब मुर्तज़ा की मृत्यु का हाल सुना तो वे पुनः अपने प्राचीन राज्य में चले आये, और उन्होंने नवीन नवाब को सिंहासन पर बैठाया। शाहजहाँ ने जब दक्षिण का समस्त व्यौरा सुना, तो उन्होंने खाँजहाँ के वापस कर देने का आज्ञापत्र निकाला, परन्तु उसमें कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। समस्त निज़ामशाही राज्य उसकी रक्षा के लिये उद्यत होगया। शाहजी ने भी मुँह न मोड़ा।

मुग़लों से घोर युद्ध हुआ, परन्तु निज़ामशाही का सौभाग्य सूर्य्य अस्त हो गया था। मुग़लों की इन दो-तीन वर्षों की चेष्टाएं विफल न हुईं, उनकी पूर्ण विजय हुई, और सन् १६३७ में निज़ामशाही का नाम इतिहास से चिरकाल के लिये विलीन हो गया। लुकजी की मृत्यु के पश्चात् जीजीबाई स्वतन्त्र हो गईं थीं। उपर्युक्त मुग़ल-युद्ध काल में भी जीजी को पूर्ववत्

---

पश्चात् उसके प्राण ले लेता था। इसी प्रकार उसने एक युवा को जिसके ऊपर यह सन्देह था, कि उसका जहानआरा से कुछ अनुचित सम्बन्ध है, पान में विष देकर मारा था। (बर्नियर का भारतीय भ्रमण)

* यलफिन्स्टन्स हिस्ट्री आफ इण्डिया।

+ रानडे रचित 'महाराष्ट्रों का अभ्युदय।'

कष्ट सहन करने पड़े थे। इन युद्धों में भी एक समय शाहजी पर बड़ी भारी आपत्ति पड़ गई थी। महलदारख़ाँ नाम का एक मुसलमान अधिकारी अम्बक दुर्ग का अधिपति था। उसने मुग़ल सेनापति से मन्त्रणा कर जीजीबाई को क़ैद करा दिया। शाहजी को इनके छुड़ाने में बड़ी कठिनता हुई थी, परन्तु जैसे तैसे वह सफलीभूत हुए। जीजी का उद्धार कर उनको शिशु शिवाजी सहित उन्होंने कुण्डाने के दुर्ग में भेज दिया। इन दिनों से कुछ समय पूर्व अर्थात् सन् १६३३ के निकट उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया था+। जीजीबाई के हृदय में इस विवाह से महान् आघात पहुँचा। वे एक प्रकार से शाहजी से विरक्त हो गईं, और अपने प्यारे पुत्र शिवा को लेकर पृथक् रहने लगीं।

निज़ामशाही * के विनष्ट होने के बाद शाहजी आदिल-शाही ⁂ में चले गये। वीर का सर्वत्र ही मान होता है, अतएव बीजापुर में भी शाहजी की प्रतिष्ठा हुई। नूतन विवाहिता पत्नी, ज्येष्ठपुत्र शम्भाजी, और जीजीबाई भी साथ में थीं, परन्तु जीजी ने वहाँ रहना पसन्द नहीं किया, और शिवाजी को लेकर वे

---

+ सुसराल से क्रोधित होकर शाहजी ने यह विवाह किया था।

* 'निज़ामशाही' अहमदनगर राज्य और 'आदिलशाही' बीजापुर राज्य का नाम था।

⁂ बीजापुर में इस समय नवाब मुहम्मद्अली आदिल का समय था। इम्पीरिअल ग़ज़ेटियर में इसका नाम 'मुहम्मदशाह' लिखा है। उपर्युक्त नाम ग्रान्ट डफ के इतिहास से ज्ञात हुआ है।

पूना में रहने लगीं। इधर बीजापुर के नवाब भी राज्य-सीमा बढ़ाने में पूर्ण यत्न कर रहे थे। बीदर और बरार का बहुत बड़ा भाग उन्होंने अपने राज्य में मिला लिया था। इस समय कर्णाट देश में कुछ अराजकता थी, अतएव शाहने शाहजी को उपयुक्त समझ कर कर्णाट भेज दिया। कावेरी प्रदेश में पहुँच कर शाहजी ने एक नया राज्य अपने पुत्र शम्भाजी के लिये स्थापित किया।

बालक शिवाजी इस समय दसवें वर्ष में पदार्पण कर चुके थे। शैशवकाल ही में मुसलमानों द्वारा पीड़ित होने के कारण शिवाजी के हृदय में मुसलमानों की ओर से एक विशेष घृणा उत्पन्न हो गई थी। शाहजी से शत्रु-भाव रखने के कारण यवन जीजीबाई को बड़ा दिक़ किया करते थे। मौक़ा पाने पर शिवाजी को भी कष्ट पहुँचाने का यत्न करते थे। परन्तु जीजीबाई की कौशलमयी बुद्धि के प्रताप से हिन्दू-बाल रवि को राहुग्रस्त होना नहीं पड़ा था। जीजी कभी उनको एक स्थान में छिपातीं, जब सन्देह हो जाता कि यवन इनका वास जान गये हैं, तो उन्हें अन्यत्र ले जातीं। इसी कारण मुसलमानों की इच्छा पूरी नहीं होती थी। ज्ञानोदय होने पर शिवाजी लुकने छिपने से उकता गये। वे प्रायः माता से पूछने लगते "तुम रोज़ रोज़ यह क्या करती हो?" पहले तो जीजी ने छिपाने का यत्न किया, परन्तु शिवाजी के निरन्तर आग्रह के कारण वे सच्ची अवस्था के कहने को लाचार हुईं। इस अवस्था का वर्णन और भविष्य के महाराष्ट्री स्वतन्त्र राज्य स्थापन का श्रीगणेश साथ ही साथ हुआ।

जीजीबाई ने कहा–"बेटा ! जिन दुष्टों से मैं तुमको अहर्निश छिपाये रखने का यत्न करती हूँ, उन विधर्मियों ने वस्तुतः समस्त भारतवर्ष का नाश कर दिया है। म्लेच्छों के कारण हिन्दुओं का हिन्दुत्व नष्ट हो रहा है। गो, ब्राह्मण त्राहि-त्राहि करते हुए अनाथों की तरह पददलित हो रहे हैं। कर्म्मभूमि दक्षिण भी निस्तेज है। हिन्दुओं का रक्त अब ठंडा हो गया। परम प्राचीन हिन्दू धर्म की दुर्व्यवस्था कौन वर्णन कर सकता है? प्यारे शिवा ! अर्जुन, भीम सरीखे प्रबल योद्धाओं की कमी हो गई है, नहीं तो क्या भारत भूमि इस प्रकार से रसातल को पहुँच जाती ? हा ! देखो कब विधर्म्मी यवनों से भारत का उद्धार होता है ?" जीजीबाई और शिवाजी जब-जब पास बैठते थे, ऐसी ही धार्मिक बातें उनमें हुआ करती थीं। कभी-कभी आवेश में आकर शिवाजी बोल उठते—"माता ! देखो हम इनको मार भगादेंगे।" बालक की ऐसी वीरोचित वाणी सुनकर जीजीबाई का शरीर रोमाञ्चित और हृदय गद्गद् हो जाता। प्राचीन स्वप्न याद कर बालक का मुख चूमती हुई वीरमाता आनन्दाश्रु बहाती हुई कहती, "शिवा ! शिवाई तेरे मनोरथ को पूर्ण करेगी।" थोड़े ही दिनों में शिवाजी यवनों के घोर विद्वेषी हो गये। इसके साथ ही साथ उनके हृदय में शिवाई देवी की अनन्यभक्ति उत्पन्न हुई। इस छोटी सी अवस्था से ही वे शिवाई भवानी के पूरे उपासक हो गये। कहते हैं कि शिवाजी ने इस देवी को सिद्ध कर लिया था। अस्तु, जो कुछ भी हो, शिवाजी का भवानी पर पूर्ण विश्वास था।

इस छोटी ही अवस्था में शिवाजी का विवाह निम्बालकर की पुत्री सुईबाई से हो गया।

पूना ग्राम, जिस में शिवाजी अपनी माता सहित रहते थे, निज़ामशाही की दी हुई उनकी पैतृक जागीर थी। शाहजी इन जागीरों का काम बहुधा ब्राह्मणों द्वारा कराते थे। इनमें नारोपन्थ और दादा कोणदेव परम विश्वस्त थे। नारोपन्थ तो कर्णाट की जागीर पर काम करते थे, और दादाजी पूना में रहते थे। दादाजी आधुनिक पूना नगर के मालथान नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। अच्छे विद्वान् होने के सिवा दादा जागीर के कामों में भी निपुण थे, अतएव शाहजी ने इनको अपने यहाँ रख लिया था। शिवाजी जब पूना भेजे गये, तो शिवाजी का रक्षण-भार इन्हीं के सिर पड़ा। दादा परम बुद्धिमान् थे। उन्होंने शिवाजी में कुछ अपूर्व लक्षण देखे। उन लक्षणों को सार्थक करने के निमित्त दादाजी ने शिवाजी की ओर बहुत ध्यान दिया। बहुत कुछ समझ बूझ कर दादा ने उनको वीर-शिक्षा दी। शिवाजी को शस्त्र विद्या की पूरी शिक्षा मिली। उस समय मरहटाओं में विद्याध्ययन की चरचा बहुत कम थी। ब्राह्मण तो विद्याप्रिय होते थे, परन्तु और लोग अन्य विषयों मे कुशल होने की इच्छा रखते थे। महाराष्ट्र के बहुधा मनुष्य या तो उस समय कृषक थे या युद्ध-विद्यासेवी थे। बालकपन ही से शिवाजी का लक्ष्यवेध ऐसा बढ़िया होता था कि बड़े-बड़े तीरन्दाज़ चकराते थे। असि-चालन में तो शिवाजी अपने समय के असि-गुरु कहलाने के योग्य थे। अश्वारोहण में

भी उस प्रान्त में कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। यह सब दादाजी की ही कृपा का फल था।

शिवाजी को पहाड़ियों पर घूमने का बड़ा शौक़ था। वे जब अवकाश पाते चट भाग कर कन्दराओं और गुफ़ाओं की सैर करते। घूमने में कभी-कभी इतने मस्त हो जाते थे कि वह बहुत रात्रि व्यतीत होने पर लौटते। जब इस प्रकार से शिवाजी को लौटने में देर होती, तो माता जीजीबाई घबरा उठतीं। ऐसा देख कर दादाजी ने शिवाजी को देर तक घूमने से रोका, परन्तु मौक़ा पाते ही शिवाजी पुनः जङ्गलों में पहुँच कर भ्रमण का आनन्द लूटते। दादाजी भी अब कुछ सोच समझ कर शिवाजी को घूमने का अवसर देने लगे। उन्होंने शिवाजी की प्रकृति पर ध्यान दिया, और तत्पश्चात् उस प्रकृति की भविष्योन्नति पर भी ग़ौर कर शिवाजी की इच्छा में अड़चन न डाली। शिवाजी आस पास के पहाड़ी देशों से ख़ूब ही परिचित हो गये। ऐसी कोई गुफ़ा और कन्दरा न रह गई थी जिसको शिवाजी ने न देखा हो।

इधर दादाजी की युद्ध-शिक्षा भी समाप्त हो आई थी। व्यूह-रचना पर उन्होंने अधिक ज़ोर दिया था। शिवाजी के बाल्यकाल के अद्भुत कर्मों को देख कर दादाजी कह उठते—"जीजी! तू इस शिवा के कारण संसार में बहुत कुछ यश पायेगी। ईश्वर इसको चिरंजीव रक्खे।" बूढ़े का यह आशीर्वाद जननी जीजी के चक्षुओं से आनन्दाश्रु टपकाता था। शिवाजी युद्ध-विद्या के साथ ही साथ जागीर सम्बन्धी कामों को भी सीखने लगे। राज्य-

प्रबन्ध का बीज यहीं बोया गया। दादाजी ने शिवाजी को पुस्तक-शिक्षा से वंचित रक्खा था। उन्होंने शिवाजी को वह शिक्षा दी थी, जो कार्य-काल आने पर काम में आ सके। धार्मिक शिक्षा के लिये दादाजी ने सुयोग्य पण्डित रक्खे थे, जो अवकाश के समय शिवाजी को रामायण और महाभारतादि सुनाते थे। थोड़े ही दिनों में उनको इन पुस्तकों से ऐसा प्रेम होगया, कि जब कभी सुनते कि आज अमुक स्थान पर कथा होगी तो मीलों चलकर शिवाजी उक्त स्थान पर पहुँचते थे। धार्मिक शिक्षा जो बाल्यकाल से आरम्भ हुई थी, उसने मृत्यु पर्यन्त अपना प्रभाव न छोड़ा। शिवाजी का जीवन धर्ममय जीवन था। धर्म ही को लेकर शिवाजी उठे थे, धर्म ही के लिये उन्होंने अनेकों बार अपने प्राणों को संकट में डाला था और धर्म ही उनका एक मूल साधन था।

धार्मिक कथाओं का प्रभाव उन पर इतना पड़ा था कि उनको सुन कभी-कभी वे रो उठते थे। उत्तेजक कथाओं को श्रवण कर उनके भुजदण्ड फड़कने लगते थे। हिन्दू धर्म के रक्षकों का इतिहास सुन वे अर्वाचीन भारत की दशा पर आँसू बहाने लगते थे। ध्यानमग्न होकर शिवाजी विचारते थे, कि क्या कभी ऐसा सुअवसर प्राप्त होगा, जब हम भारत का अभ्युदय देखकर नेत्रों को सफल करेंगे ? क्या कभी हम भी इस योग्य होंगे, कि विधर्मी यवनों को ध्वस्त कर पवित्र भारतभूमि का उद्धार कर सकेंगे ? देखें कब हिन्दू राज्य स्थापित हो ? हिन्दुओं की आर्त्तदशा पर

विचार करते हुए शिवाजी के ओष्ठ काँपने लगते थे। वीर आवेश में वे सोचते थे, कि देखें वह कौनसा युद्धक्षेत्र होगा जहाँ मैं उद्दण्ड यवनों का रक्त बहा कर अपनी तृष्णा को बुझाऊँगा ? हा! वह कौन सी घड़ी होगी, जब मैं अपने पूर्व पुरुषों के दुःख मिटाने के लिये मुसलमानों के रक्त से पितृ तर्पण कर पुरखाओं की इच्छाओं को पूर्ण करूँगा ? जब तक जननी जन्मभूमि का उद्धार न करलूँ तब तक मेरे आनन्द से समय व्यतीत करने को सहस्र वार धिक्कार है। सोते जागते इस भावी महावीर को यही धुन सवार रहती थी। कभी-कभी स्वप्न में भी शिवाजी भारत-रक्षा के लिये चिल्ला उठते थे। मातृभूमि के नाम पर उनका हाथ तलवार पर जाता था, और फिर विचार में निमग्न होकर वे अश्रुपात करने लगते थे।

इस भाव का मूल क्या था ? इसका मूल वही धार्मिक शिक्षा थी, जो शिवाजी के समस्त जीवन का उद्देश्य था। धर्म्म का प्रभाव उनपर इतना पड़ा था, कि उन्होंने तीन वार असार-संसार को छोड़ कर संन्यास लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। परन्तु गुरुजनों के समझाने से उन्होंने अपने विचार पलट दिये* और संसार में पुनः प्रवेश किया। शिवाजी का धर्म के ऊपर बाल्यकाल ही से इतना दृढ़ विश्वास था, कि चाहे जैसा कठिन समय उपस्थित हो जाय वे धार्मिक व्यवस्था को कदापि नहीं

---

* इतिहास में प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन वीरों ने एक वार संसार त्यागने का संकल्प किया, परन्तु यदि फिर उनको उसी क्षेत्र में आना पड़ा तो उन्होंने संसार में गुरुतम कार्य किये।

त्यागते थे। भवानी के उत्कट उपासक शिवाजी जब किसी काम को आरम्भ करते, तो अपनी अधिष्ठात्री देवी के कल्याणकर वचन सुनने को मन्दिर में अवश्य पधारते। जो कुछ उन्हें मन्दिर में भासित होता था, उसको वे लिखकर रख लेते थे और उसीके अनुसार काम करते थे। उसी दृढ़ विश्वास के कारण शिवाजी औरङ्गज़ेब की कुटिल नीति को जानते हुए भी दिल्ली गये थे, और अफ़ज़लखाँ से सांघातिक समय पर एकाएकी मिलने को प्रस्तुत हो गये थे। "धर्मो रक्षति रक्षितः" यह महावाक्य शिवाजी के जीवन में सत्यतः चरितार्थ होता था।

युद्ध और धर्म की शिक्षा दिलाकर दादाजी ने शिवाजी को जागीर के कामों की ओर लगाया। जब वीर बालक शिवाजी को अन्य कामों से फ़ुरसत मिलती, तो दादाजी उनको अपने साथ ले जाकर जागीर में घुमाते थे। इस भ्रमण में एक बड़ी भारी शिक्षा छिपी हुई थी। देशभक्ति और स्वजातिभक्ति उत्पन्न कराने का यह बड़ा अच्छा तरीक़ा था। प्रजा की अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए शिवाजी को दादाजी यह दिखलाते थे, कि देखो महाराष्ट्रीय प्रजा की कैसी दुर्दशा है? मुसलमानों के पैशाचिक अत्याचार के कारण प्रजा की क्या हालत है? मुसलमानी धर्म्म को स्वीकृत किये हुए हिन्दुओं को दिखला कर दादाजी यह बतलाते थे, कि पैतृक धर्म्म विसर्जन कर म्लेच्छों के भोजन, आचार, व्यवहार आदि का अवलम्बन कर ये कलंकित हिन्दू हिन्दुत्व पर कालिमा पोत रहे हैं। कहीं भग्न मन्दिरों को

दिखलाते हुए दादाजी समझाते थे, कि अमानुषिक प्रचण्डता को प्रदर्शित कर विधर्म्मियों ने इन मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ कर मसजिदें तैयार कराई हैं। ऐसी ही बातों को दिखला कर दादाजी शिवाजी की विद्वेषाग्नि में फूंक मार रहे थे। इसके साथ ही साथ प्रजा की अवस्था दिखला कर उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करा रहे थे। प्रजा भी इनको देख कर परम प्रसन्न होती थी। शिवाजी के समवयस्क मित्र जब शिवाजी के साथ में रहते थे, तो शिवाजी उन पर अपने आन्तरिक भाव प्रकट कर उनको अपना-सा बनाने का प्रयत्न करते थे। बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपनी शिक्षा से अपने शिष्य को वीर बना दिया। ऐसे शिष्यों द्वारा गुरु संसार में महान् परिवर्त्तन करा देते हैं।

जीजीबाई तथा दादाजी की शिक्षा में ही शिवाजी की बाल्यावस्था व्यतीत हुई। मुसलमानों से आन्तरिक द्वेष रखते हुए शिवाजी युवावस्था की ओर बढ़े।

---

## षष्ठ परिच्छेद

# कार्य क्षेत्र में अवतरण

शिवाजी ने युवावस्था काण्ड के प्रथमाध्याय में पैर रक्खा। इस समय की धीर, वीर, गम्भीर, स्फूर्तिमान्, बलिष्ठ मूर्ति को जो देखता था, वही मुग्ध हो जाता था। वीर शिवाजी जिधर निकल जाते थे उधर ही लोग टकटकी बाँध कर उनके प्रिय दर्शन करते। अपनी सहनशीलता के कारण शिवाजी अपनी प्रजा के परम प्रेमास्पद हो रहे थे। सहिष्णुता के कारण शिवाजी का आसपास के मरहटों से प्रेमाधिक्य हो गया। मरहटों में मावली जाति से उनका महान् प्रेम था। शिवाजी के अभिमानशून्य वर्त्ताव से मावली जाति भी उन पर मोहित हो गई।

मावली जाति प्रायः उस समय असभ्य और अशिक्षित गिनी जाती थी। ये लोग अपना समय खेती करने में बिताते थे, परन्तु जब किसी विदेशी शत्रु का आक्रमण होता था, तो ये सब एकत्रित हो एक भाव से मातृ-भूमि की रक्षा के लिये परिकर बाँध कर तैयार हो जाते थे, परन्तु शान्ति के समय युद्धकला से उनका कुछ सम्बन्ध नहीं रहता था। इस मावली जाति में ऐक्यसूत्र की आवश्यकता थी। कारण यह कि इस जाति के कितने ही मुखिया थे, और मुखियाओं के विरोध के कारण मावली जाति

में अनबन थी, परन्तु उसमें स्वदेश-प्रेम का आधिक्य था। इनमें सब से बड़ा गुण यह था, कि धोखा देना इस जाति ने सीखा ही न था। जिसके ये मित्र हो जाते थे उसका साथ आजन्म देते थे। इस मावली जाति के कुछ मनुष्य दादाजी के यहाँ काम करते थे, अतएव शिवाजी का सम्पर्क इन लोगों से बाल्यकाल ही से हो गया था। शिवाजी इनके गुणों से मोहित हो कर इन पर दया, नम्रता और करुणा का भाव प्रदर्शित कर इनको सर्वदा प्रसन्न रखते थे, अतएव ये भी शिवाजी के पूर्ण सहचर हो गये थे। जब शिवाजी कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए, तो उन्होंने इस जाति को अपना सहयोगी बनाया। थोड़े ही दिनों में मावली सर्दारों को अपना प्रेमी बना कर उन्होंने घर के सर्वनाशी झगड़ों को दूर कर जातीयता की वृद्धि की। मातृभूमि की रक्षा का मन्त्र लेकर वे कार्यक्षेत्र में उतरे थे, अतएव प्रथम उन्होंने मावली जाति को इस मन्त्र से दीक्षित किया। ये भी इस मन्त्र से अभिमन्त्रित हो कर शिवाजी की सफलता के लिए प्राणपण से उद्यत हो गये। मावली-अधिपतियों के साथ में शिवाजी ने प्रत्येक घाट, घाटी, तथा पहाड़ीपथ देख भाल लिये थे। महाराष्ट्र में अब कोई ऐसी जगह न बची थी जहाँ शिवाजी न पहुँच गये हों।

जिस समय शिवाजी अपनी उन्नति के लिये सचेष्ट हुए, उस समय दक्षिण के राज्य विपद्ग्रस्त थे। उस समय औरङ्गज़ेब का राज्य-काल था। तीन सौ वर्ष पूर्व की घटनाएँ पुनः घटित होने लगीं। दिल्ली से निरन्तर आक्रमण होने के कारण दक्षिणी

राज्यों की शक्ति प्रतिदिन क्षीण होती चली जाती थी। बीजापुर इत्यादिक को स्वस्थ होने का अवकाश प्राप्त नहीं होता था। १० मई सन् १६३६ ई० को सम्राट् शाहजहाँ ने अपने तृतीय पुत्र औरङ्गज़ेब को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर भेजा। उसने आते ही निज़ामशाही का मूलोच्छेदन कर दिया। अन्तिम शाह को बन्दी कर औरङ्गज़ेब ने उसे ग्वालियर भेज दिया। इस समय ख़ानदेश, अहमदनगर, तिलंगाना और बरार मुग़लों के अधीन हो गये थे। सन् १६४३ ई० में जब औरङ्गज़ेब ने फ़क़ीरी ली, तो उसने वगलान* प्रदेश भी मुग़ल राज्य में मिला दिया था। बीजापुर आदि की परिस्थिति ठीक नहीं थी। वहाँ एक प्रकार की अराजकता फैली हुई थी, देश के प्रबन्ध में बड़ी ही गड़बड़ी थी। देश की कुञ्जी अर्थात् दुर्गों की परम दुर्दशा थी, दुर्गाधिपति प्रायः स्वतन्त्र थे। युद्धकाल को छोड़ इन क़िलों की हालत बहुत ख़राब रहती थी। मालूम होता है कि मुसलमान बादशाह इनके वास्तविक लाभ से अनभिज्ञ थे, अतएव उनकी यह शोचनीय दशा रहती थी।

ऐसे ही समय में शिवाजी ने राष्ट्र निर्माण का कार्य्य हाथ में लिया था। इस समय शिवाजी के तीन विश्वास पात्र मित्र थे, देशमुखबाजी सफलकर, यज्ञजी कंक और तानाजी मूलसरे। यज्ञजी कंक, और तानाजी मूलसरे दोनों प्रतिष्ठित ज़मींदार थे। यों तो शिवाजी अपने अधीनस्थ समस्त मुखियाओं का आदर-सत्कार

---

* यह प्रदेश ख़ानदेश और पश्चिमी घाट के बीच में था।

करते थे, परन्तु हार्दिक प्रेम तथा विश्वास इन्हीं तीन सज्जनों पर था। इन तीनों की ही सलाह से महाकार्य-सम्पादन में शिवाजी प्रवृत्त हुए। सब से प्रथम यह बात सोची गई, कि जब तक कोई दुर्ग अपने अधीन न हो तब तक उन्नति करना असम्भव है। दुर्ग विना हम लोग एक प्रकार से अरक्षित हैं। यही सोचकर शिवाजी ने दुर्ग लेना निश्चय किया। पूना की जागीर में कोई दुर्ग न था, अतएव उनकी दृष्टि तोरण की ओर गई। अड़ोस-पड़ोस के क़िलों में 'तोरण' बड़ा मज़बूत समझा जाता था, अतएव उसी को अधिकृत करना विचारा गया। शिवाजी ने तोरण के गढ़पति से गुप्त सन्धि कर सन् १६४६ ई० में क़िले को अपने अधिकार में ले लिया। इतिहास में यह घटना चिरस्मरणीय रहेगी। इस दुर्ग के हस्तगत होते ही शिवाजी के राजस्थापन का श्रीगणेश हुआ।

दुर्ग तो ले लिया गया, परन्तु यह दुर्ग बीजापुर का था। यदि बीजापुर के सुलतान बिगड़ उठते, तो शिवाजी की क्या शक्ति थी कि उन्हें रोक सकते। अतएव उन्होंने सुलतान को प्रसन्न करने के लिये एक चाल चली। यह समझ कर कि सुलतान को चिढ़ाना कुछ अक़्लमन्दी का काम नहीं है, शिवाजी ने अपने वकील बीजापुर दरबार में भेजे। उन्होंने इस बात को दिखलाया, कि 'तोरण' को मेरे अधिकार में रखने से सुलतान का बड़ा लाभ है। पूर्व क़िलेदार ने कई वर्षों का कर भी नहीं दिया। मैं वह सब देने को राज़ी हूँ, और यदि सुलतान चाहें तो उनकी मैं सहायता भी

दत्तचित होकर करूं। बीजापुर से उत्तर आने में कुछ देरी हुई, उसका कारण यह था, कि सुलतान का चित्त उस समय कर्नाटक में लगा हुआ था। यह विलम्ब शिवाजी को अत्यन्त लाभकारी हुआ। उनको तोरण के दृढ़ करने का अवकाश मिल गया। ईश्वर की कृपा से पूर्व सञ्चित धन भी इस क़िले में प्राप्त हुआ। थोड़े दिनों के बाद उत्तर लेकर वकील लौट आये, और उन्होंने शिवाजी को सब हाल कह सुनाया।

दुर्ग को अभेद्य बना कर शिवाजी ने उसका नाम 'तोरण' के स्थान पर "पूर्णचन्द्रगढ़" रक्खा।

---

## सप्तम परिच्छेद

# शिवाजी के आरम्भिक कार्य्य

हम गत परिच्छेद में लिख आये हैं, कि तोरण दुर्ग में शिवाजी को बहुत-सा धन प्राप्त हुआ था। उन्होंने उस धन से अस्त्र, शस्त्र, और गोला बारूद ख़रीद डाला। अपनी छोटी-सी सेना में वह अधिक वीरों को भर्ती करने लगे। इसके पश्चात् शिवाजी ने एक दूसरा दुर्ग बनाने का निश्चय किया। तोरण से तीन कोस की दूरी पर महोरबद्ध नाम का एक पहाड़ है। इसी पहाड़ पर शिवाजी ने एक साल से कम समय में एक दुर्ग तैयार करा लिया। सन् १६४७ में यह दुर्ग तैयार होगया और इसका नाम 'रायगढ़' रक्खा गया। जिस समय रायगढ़ बन रहा था, शिवाजी ने अपने वकील बीजापुर-दरबार में भेज दिये थे, परन्तु बीजापुर-सुलतान प्रसन्न न हुए। उनके दरबार में बड़ी हलचल मची। सुलतान ने शाहजी से शिवाजी के इस कार्य का ब्यौरा पूछा। प्रत्युत्तर में शाहजी ने लिखा, कि मेरा वंश राजभक्त है, अतएव शिवाजी ने जो काम मुझ से विना आज्ञा लिये हुए भी किया है अवश्यमेव वह जागीर और दरबार की भलाई के लिये किया होगा। शाह को यों पत्र लिख कर

शाहजी ने दादाजी को पत्र लिखा, कि शिवाजी भविष्य में ऐसा कार्य्य न करें।

शाहजी की आज्ञानुसार दादाजी ने शिवाजी से कहा—"देख शिवा! तू अपने पिता की आज्ञा मान कर इस काम से हाथ खींच ले, ऐसे कामों में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं। पग-पग पर मृत्यु का सामना करना पड़ता है। इस उलझन से केवल तुम्हारे ही प्राण सङ्कट में नहीं हैं, किन्तु सुलतान के क्रोधानल में तुम्हारा समस्त वंश आहुति हो जायगा, अतएव मुसलमान-दरबार की अधीनता स्वीकार करते हुए राजभक्ति का पूर्ण परिचय दो।" अब यहाँ यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है, कि दादाजी शिवाजी को देश भक्ति और स्वतन्त्रता की शिक्षा दे चुके थे, और उनके हृदय में मुसलमानों के प्रति द्वेषानल प्रज्वलित कर चुके थे, फिर वे उन्हें आज ऐसा आदेश क्यों दे रहे थे? उसका उत्तर तो यह है कि दादाजी शिवाजी की प्रकृति से भले प्रकार परिचित थे। उनको ज्ञात था कि जो बीज शिवाजी में बो दिया गया है, उसका नाश होना सम्भव नहीं है। दूसरे इस प्रश्न का उत्तर उस समय मिल जाता है, जिस समय मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए दादाजी ने शिवाजी को उपदेश दिया था।

दादाजी ने इस समय शिवाजी को ख़ूब समझाया, परन्तु शिवाजी ने "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" को अच्छी तरह समझ लिया था। वे जन्म-भूमि-रक्षा के लिये आत्म-समर्पण कर चुके थे। 'कार्यं साधयेत वा शरीरं पातयेत वा"

उन्होंने इस कठिन मन्त्र को हृदयाङ्कित कर लिया था। संसार में कौन था जो उनको इस प्रतिज्ञा से विचलित करा सकता? उन्होंने इस समय दादाजी का मन भर दिया, और वे फिर अपने कार्य्य-साधन में प्रवृत्त हुए। परन्तु दैव माया! वृद्ध दादाजी को यह सौभाग्य प्राप्त न हुआ कि वह मातृभूमि का उद्धार अपने चक्षुओं से देख सकते। स्वर्ग को जाते हुए दादाजी ने शिवाजी को बुला कर कहा—"पुत्र शिवाजी! मेरी अन्तिम तथा हार्दिक इच्छा को सुनो। मैं अब मरणासन्न हूँ। दैव गति कौन रोक सकता है? मैं क्या कर सकता हूँ? मुझे दुःख है कि मेरी आँखें तुम्हारा प्रचंड पराक्रम न देख सकेंगी, और मेरे कान तुम्हारा उज्ज्वल यश न सुन सकेंगे। इस का सर्वदा ध्यान रखना कि अपने जीवन को मातृ-भूमि के उद्धार में सोत्साह व्यतीत करना। भूल कर भी गो-ब्राह्मण की रक्षा से मुख न मोड़ना। हिन्दू जाति और देवालयों की रक्षा में कभी त्रुटि न करना। 'कर्त्तव्य-पालन में प्राण जायँ या रहें' इस मूलमन्त्र को कभी विस्मृत न करना।" ऐसा सदुपदेश देकर दादाजी इस नश्वर देह को त्याग कर परम धाम सिधारे।

शिवाजी को इनकी मृत्यु से अति शोक हुआ, परन्तु उस शोक को दबा कर उन्होंने यथाविधि उनका प्रेत कर्म्म कराया और वह पुनः अपने कार्य्य में संलग्न हुए। बाल्यकाल से ही जो उपदेश शिवाजी के हृदय पर अङ्कित किये गये थे, मरणासन्न दादाजी की गम्भीर और सारगर्भित वाणी ने उनके महत्त्व और

प्रभाव में विशेष वृद्धि की। दादाजी के प्रत्येक शब्द उनको आकाशवाणी की तरह प्रतीत होने लगे। अब विशेष उत्साहित होकर शिवाजी ने अपना कार्य्यारम्भ किया। दादाजी की मृत्यु के पश्चात् जागीर का समस्त भार शिवाजी पर पड़ा। उनकी जागीर उन्नतावस्था में थी। अपने सम्पूर्ण कार्य्य-कर्त्ताओं को बुला कर शिवाजी ने उद्देश्य-साधन का उपदेश देना आरम्भ किया। उन्होंने भी तन, मन से अपने प्रभु की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। शाहजी इस समय कर्नाटक में थे। उन्होंने दादाजी की मृत्यु का हाल नहीं सुना था। कुछ धन की माँग के लिये शाहजी ने अपना दूत दादाजी के पास भेजा, परन्तु उस समय शिवाजी संचित धन सेनादि की वृद्धि में व्यय कर रहे थे, अतः पहले तो टालमटोल करते रहे, परन्तु अन्त में लिख भेजा कि यहाँ का व्यय बहुत बढ़ गया है, अतएव धन का भेजना एक प्रकार से असम्भव है। यहाँ के व्यय के लिये यदि आप कुछ कर्नाटक से भेजदें, तो इस समय बड़ा काम निकल जाय। यह उत्तर पाकर शाहजी चुप्पी साध गये।

शाहजी के दूत से छुट्टी पाकर शिवाजी को यह चिन्ता हुई, कि चाकनकोट के क़िलेदार फिरङ्गीजी और सोपा परगने के शासक बाजी मोहिते मेरे वश में किस प्रकार आ सकते हैं? फिरङ्गीजी तो शिवाजी के कहने सुनने में आ गये, और उन्होंने अपना दुर्ग शिवाजी को अर्पित कर दिया। इतना ही नहीं किन्तु भविष्य में शिवाजी के कार्य्य-सम्पादन में पूर्ण सहायता देने

की प्रतिज्ञा की जिसको उन्होंने यथाशक्ति निवाहा। बाजी-मोहिते ने शिवाजी की प्रार्थना किसी प्रकार से भी स्वीकार न की। वह शिवाजी की सौतेली मा तुकोबाई का भाई था, परन्तु दुष्टात्मा होने के कारण सहायता देने के बदले विरोध करने लगा। अन्त में कोई उपाय न देख कर शिवाजी ने एक अंधेरी रात्रि में कुछ मावलियों को लेकर बाजी पर आक्रमण कर विजय पाई। शिवाजी ने विजय प्राप्त होने पर वीरोचित उदारता दिखलाते हुए उसको बन्दी न किया, किन्तु सम्मान सूचक शब्द कह कर उसकी इच्छानुसार उसे तुकोबाई के पास भेज दिया❀। इन दो कामों के करने के उपरान्त शिवाजी ने कुण्डाने❀ के यवन क़िलेदार को कुछ धन देकर उक्त दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। यह दुर्ग समुद्र तट से लगभग ४३०० फ़ीट और पूना के धरातल से प्रायः ३३०० फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित है। इस दुर्ग में प्रवेश करने के लिये कोई भी सीधा मार्ग नहीं है।

पूना से प्रायः चौहद मील पर नैऋत्य कोण में यह दुर्ग स्थित है। सिंहगढ़ और भूलेश्वर पहाड़ों के उच्चतम शिखर पर यह दुर्ग निर्मित किया गया था। कब और किसने इसको बनवाया, इस बात का पता कुछ भी नहीं चलता है। परन्तु

❀कहते हैं कि इस विजय में शिवाजी को तीन सौ अश्वारोही और अनेक वीर सैनिक प्राप्त हुए थे।

❀ सिंहगढ़ विजय में इसका नाम कोंडाणा लिखा है। यह प्रदेश ख़ानदेश और पश्चिमी घाट के बीच में था।

इतना अवश्यमेव कहा जा सकता है, कि इस देश में मुसलमानों के आगमन के पूर्व भी यह दुर्ग स्थित था। जनोक्ति है कि यहाँ पर कौण्डिन्य ऋषि का आश्रम था, अतएव उस स्थान का नाम कौण्डिन्यपुर पड़ा हो, जिससे कुण्डाना ( कोडाणा ) बन गया हो। इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि यह दुर्ग यवनों का बनवाया न होकर किसी हिन्दू राजा का बनवाया हुआ था। जो कुछ भी हो यह दुर्ग अति प्राचीन और सुदृढ़ था। शिवाजी ने इस दुर्ग का नाम 'सिंहगढ़' रक्खा। इस दुर्ग की प्राप्ति से शिवाजी को अतीव लाभ हुआ। इस दुर्ग के आस पास मावली जाति की अधिकता थी, अतएव जब यह दुर्ग शिवाजी के पास आगया तो समस्त मावली भी उनके प्रभुत्व में आगये। इससे उनकी सेना की वृद्धि बहुत होगई। इस समय शिवाजी की जागीर में पूना और सूपा के सिवा वारामती और इन्द्रपुर भी सम्मिलित होगये। इन सब कामों के उपरान्त शिवाजी की दृष्टि पुरन्धर पर पड़ी। इस दुर्ग के हस्तगत करने की उनको परमावश्यकता थी, क्योंकि यह दुर्ग पूना और वारामती के रास्ते में पड़ता था। उसके प्राप्त किए विना उनका रास्ता सुगम नहीं होता था।

इस दुर्ग का अध्यक्ष एक ब्राह्मण था। पूर्व ही से उसकी दादाजी से हार्दिक सहानुभूति थी, परन्तु अपनी सरकार पर उसकी श्रद्धा न थी। इसी कारण वह कभी-कभी उत्पात कर बैठता था। उसकी स्त्री ने उसको कई बार समझाया, परन्तु उसने उस ओर कुछ भी ध्यान न दिया, जिसका फल यह निकला कि

बीजापुर के सुलतान ने क्रोधित होकर सन् १६४८ ई० में उसको तोप के मुँह पर बँधवा कर उड़वा दिया। दुर्गाध्यक्ष की मृत्यु के पश्चात् उसकी अध्यक्षता के निमित्त उसके तीन पुत्रों में वैमनस्य हो गया, और वे एक दूसरे से लड़ने के लिये तैयार होगये। भाग्यवश युद्ध छिड़ने के पूर्व उन्होंने यह सलाह की, कि शिवाजी जो फ़ैसला करें वह हम तीनों को माननीय होगा। उन्होंने शिवाजी से अपनी इच्छा प्रकट की। शिवाजी उस समय पुरन्धर होकर सूपा को जा रहे थे, रास्ते में उन लड़कों के कहने से रुक गये। क़िले में जाकर उन्होंने सुना कि वहाँ के मनुष्यों की यह इच्छा है, कि स्वयं शिवाजी इस दुर्ग को अपने अधिकार में ले लें। उन लोगों की यह इच्छा नहीं थी कि इन अयोग्य लड़कों में युद्ध हो जाय जिससे निरर्थक जन हानि हो। शिवाजी को दुर्ग पर अधिकार करने का अच्छा अवसर मिला। दोनों भाइयों को शिवाजी से बातें करते हुए छोड़ कर सब से बड़ा भाई शयन करने चला गया। शिवाजी ने दोनों को अपने वश में कर बड़े भाई को क़ैद कर लिया। इस प्रकार शिवाजी ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। मि० डफ़ ने शिवाजी के इस कार्य की निन्दा की है, परन्तु उन्होंने स्वयं माना है कि दुर्ग को हस्तगत करने के अनन्तर शिवाजी ने उनको जागीर प्रदान की थी और उन्हें अपनी सेना में भर्ती कर लिया था, जिसमें रहकर उन्होंने सुख्याति प्राप्त की। इस घटना से डफ़ साहब का मत खण्डित हो जाता है। शिवाजी ने व्यक्ति विशेष पर

ध्यान न देकर सर्वसाधारण की इच्छा की ओर ध्यान दिया, अतएव उनका यह कार्य कदापि निन्दनीय नहीं कहा जा सकता है।

इसके उपरान्त शिवाजी ने अल्पकाल में रोहिड़ और कल्याण तथा सह्याद्रिस्थ दुर्गों को हस्तगत कर लिया। उनकी शक्ति इस समय प्रतापगढ़ तक पहुँच गई थी। लोहगढ़ और रायरी दुर्गों के विजय के पश्चात् उनके प्रारम्भिक कार्यों का अन्त होगया। इस समय प्रायः चाकन से नोरी तक की भूमि उनके अधिकार में आगई थी। अब यहां एक यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शिवाजी ने इतने दुर्गों को अपने अधिकार में कर लिया, और बीजापुर के सुलतान कानों में तेल डाले पड़े रहे? इस प्रश्न के उत्तर का कुछ भाग हम ऊपर लिख आये हैं, परन्तु यहां पुनः यह कहना आवश्यक है कि जिस समय उन्होंने 'रायगढ़' और 'तोरण' के दुर्गों पर अपनी पताका फहराई थी, उस समय उन्होंने सुलतान को लिख भेजा था कि मेरा यह कार्य सरकार की वृद्धि के लिये है, जिस से सुलतान भी सन्तुष्ट होगये थे। बाजीमोहिते का निकाल देना शिवाजी का आधिपत्य-कर्म था। बाजी उन्हीं की जागीर में रहकर उन से विरोधाचरण करता था, अतएव उसमें सुलतान के हस्तक्षेप करने की कुछ आवश्यकता नहीं थी। शिवाजी के अन्तिम कार्य्यों से बीजापुर के सुलतान के कान खड़े हो गये थे। जिस समय शिवाजी ने कल्याण पर अधिकार जमाया, बीजापुर से उनकी अनबन प्रारंभ होगई, और यहीं से शिवाजी के जीवन-नाटक का द्वितीय पट उठता है तथा प्रथम पट गिरता है।

## अष्टम परिच्छेद

# बीजापुर से अनबन

अब तक शिवाजी ने जो कुछ दुर्ग या भूमि पाई थी, उसमें उन्हें नर-रक्त बहाने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी, और न अभी तक उन्होंने कुछ राज्य-विभाग में गड़बड़ की थी। परन्तु अब प्रतिदिन की विजय कब तक छिप सकती थी। धीरे-धीरे सब ख़बरें सुलतान के कानों तक पहुँचने लगीं, परन्तु शिवाजी ने इस बात की कुछ भी शंका न की। मत्तमृगेन्द्रवत् शिवाजी यवन-दुर्गाध्यक्षों के मस्तक विदारने लगे। निरुद्यम बैठना तो उन्होंने सीखा ही न था। वे सर्वदा कुछ न कुछ यत्न किया ही करते थे। अब उन्होंने यह सोचा कि हमारे लिये यह अत्यावश्यक है, कि हम सर्वदा देश-दशा से परिचित रहें। अतः देश का हाल जानने के लिये उन्होंने गुप्तचर नियुक्त किये, और उन्हें चारों ओर भेज दिया। स्वामिभक्त गुप्तचर भी अपने कार्य-सम्पादन में निरुत्सुकता न दिखलाते थे। एक दिन एक गुप्तचर ने आकर कहा कि कल्याण के सूबेदार मौलाना अहमद के पास कुछ कोष जा रहा है। विधर्मियों का धन लूटने में कुछ पाप न समझ कर शिवाजी ने उसको छीन लेने का विचार किया। सूपा से तीन सौ अश्वारोही और थोड़े-से

मावली वीरों को लेकर शिवाजी ने जाते हुए कोष पर आक्रमण कर उसे छीन लिया, और उसे लेकर वे रायगढ़ चले आये। सुलतान तक क्या यह ख़बर भी न पहुँची होगी कि शिवाजी ने काङ्गोडी, टोग, टिकोना, भूरूप, कारी इत्यादि दुर्ग हस्तगत कर लिये ? इसके पश्चात् उन्होंने कोकन के कई एक नगर लूट लिये, जिसमें उन्हें बहुत-सा धन मिला। प्राप्त धन से उन्होंने अपनी सैन्यशक्ति में बहुत उन्नति की।

आबाजी सोनदेव जिन्होंने दादाजी से शिक्षाग्रहण की थी कल्याण के सूबेदार से भिड़ पड़े, जिसका फल यह हुआ कि आबाजी सोनदेव ने मौलाना अहमद को बन्दी कर लिया, और उस प्रान्त के समस्त गढ़ों पर अपना अधिकार जमा लिया। मौलाना को बन्दी कर आबाजी ने उनको शिवाजी के सुपुर्द कर दिया। आबाजी के इस कार्य से प्रसन्न होकर शिवाजी ने उनको वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया। आबाजी ने वहाँ पहुँच कर प्राचीन राज्य पद्धति पर कार्य्यारम्भ किया। कल्याण के सूबे के पास यवन सूबेदार सीदी का सूबा था, अतएव शिवाजी को उससे सर्वदा खटका रहता था। उस भय को दूर करने के लिये उन्होंने उसके निकट दो दुर्ग बनवा दिये।

इधर बन्दी मौलाना साहब का उचित सत्कार कर शिवाजी ने उनको बीजापुर भेज दिया। सुलतान ने जिस समय यह समस्त वृत्तान्त सुना उनकी क्रोधाग्नि भभक उठी। प्रथम तो उन्होंने अहमद को तिरस्कृत कर राजधानी से निकाल दिया,

और पश्चात् वे शिवाजी के दमन करने का प्रयत्न करने लगे। इस समय उनको इस बात का ध्यान आया, कि इस सब उत्पात के मूल कारण शाहजी ही हैं। यदि उन्होंने पहले ही से शिवाजी को रोका होता, तो कदापि ये समस्त बातें सम्मुख न आतीं। शिवाजी को रोकने के बजाय वे उनको उभारते हुए से जान पड़ते हैं। ऐसी अवस्था में कर्नाटक की जागीर से शाहजी द्वारा शिवाजी को सहायता पहुँच सकती है। ऐसा विचार कर सुलतान ने प्रथम शाहजी का ही दमन आवश्यक समझा। उनका यह ख्याल था कि यदि शाहजी बन्दी कर लिये जायँगे, तो शिवाजी भग्नोत्साह होकर अवनत हो जायँगे। सुलतान ने इस काम के लिये मुहदल के नायक बाजी घोरपड़े को उपयुक्त समझा। एक गुप्त पत्र लिख कर बाजी से उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। पत्र के अन्त में यह लिख दिया था, कि शाहजी को बन्दी करते समय वह इस बात का ध्यान रक्खे कि उनके हृदय में सन्देह उत्पन्न न होने पावे, क्योंकि यदि उनको सन्देह हो जायगा, तो उनका हाथ आना कुछ हँसी खेल नहीं है। उनका हाथ से निकल जाना बीजापुर राज्य के लिये विष-कण्टक हो जायगा, अतः इस कार्य-सम्पादन में तुम बड़ी सावधानी से काम लेना।

पत्र को पाकर बाजी फूल कर कुप्पा हो गये। उन्होंने सोचा कि अब मेरे अच्छे दिन आरहे हैं। मैं यदि अपने कार्य्य में सफलीभूत हुआ, तो दरबार में अवश्य मेरी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी, और मुझे लाभ भी अधिक होगा। आजकल ईश्वर मेरे ऊपर अनु-

कूल ज्ञात होता है। इसी प्रकार मन ही मन सोचता और प्रसन्न होता हुआ वह शाहजी को बन्दी करने को उद्यत हुआ। उस हिन्दू कुलकलङ्क ने अपने यहाँ एक उत्सव किया, और उसमें शाहजी को भी निमंत्रण दिया। शाहजी को इस विश्वासघात का ज्ञान न था। किसी प्रकार की शंका न कर सामान्य भाव से शाहजी बाजी के गृह पर चले गये। भोजन करते समय बाजी ने गृहस्थित गुप्तचरों द्वारा शाहजी को बन्दी कर लिया। शाहजी के पास उस समय कोई अस्त्र भी न था, जिससे वे अपनी रक्षा करने में समर्थ होते। परवश होकर शाहजी बन्दी हुए। दुष्ट ने दुष्टता का यहीं पर अन्त न किया, उसने तत्क्षण उनको सुलतान के पास बीजापुर भेज दिया। अपनी धूर्त्तता में पूर्ण सफलता मिली देख सुलतान फूले न समाये। उन्होंने जान लिया कि अब शिवाजी की कुंजी मेरे हाथ में आगई, अब उनके पतन में कुछ भी विलम्ब नहीं है।

सुलतान ने शाहजी को दरबार में बुलाकर कहा—"शाहजी! तुम अच्छी तरह से जानते हो कि तुमने हमारा नमक खाकर ऐसा पुत्र उत्पन्न किया है, जो अन्नदाता ही के ऊपर हाथ साफ करना चाहता है। इस समय तुम्हारी इसी में भलाई है, कि तुम शिवाजी को रोक दो, और अधिकृत भूमि और दुर्गों को मेरे समर्पण करादो, नहीं तो तुम हमको जानते ही हो। देखो शाहजी, हमको मालूम होगया है कि ये सब बीज तुम्हारे ही बोये हुए हैं। जानलो कि यदि तुम शिवाजी के रोकने का यत्न

न करोगे तो तुम्हें जीवित ही पृथ्वी में गड़वा दूंगा।" सुलतान की धमकी सुनकर शाहजी अपने को निर्दोष प्रमाणित करते हुए कहने लगे, कि शिवाजी के इन कामों से मेरा तनक भी सम्बन्ध नहीं है। आप उसके पतन के निमित्त जो उचित यत्न समझें सो करें, उसमें मुझे उज्र न होगा। शाहजी की इस बात से सुलतान को सन्तोष न हुआ। उन्होंने शाहजी को एक काल-कोठरी में बन्द करा दिया। जिस कोठरी में शाहजी बन्द किये गये थे वह अति ही छोटी थी। हवा आने जाने के निमित्त उसमें केवल एक छोटा-सा झरोखा था। कोठरी बन्द करते समय सुलतान ने शाहजी से कह दिया था, कि यदि नियत समय तक शिवाजी आत्म समर्पण न कर देंगे, तो यह छिद्र भी बन्द करा दिया जायगा, और यही कोठरी तुम्हारी क़ब्र हो जायगी।

जिस समय शिवाजी ने सुना कि सुलतान ने उनके पिता को क़ैद कर उनके प्राण लेने का संकल्प किया है, और उस संकल्प का कारण मैं ही हूँ, तो उन्होंने आत्मसमर्पण करने का विचार किया। शिवाजी पूर्ण मातृ-पितृभक्त थे। 'पिता धर्म्मः पिता स्वर्गः' इस वाक्य को वे अच्छी तरह मनन करते थे। शिवाजी ने सब विजय-लालसा को तिलाञ्जलि देकर सुलतान के यहाँ आत्मसमर्पण करके पिता का उद्धार करना विचारा। जिस समय शिवाजी शाहजी के मुक्त कराने का प्रयत्न सोच रहे थे, उनकी प्राणेश्वरी सुईबाई ने आकर तीव्र स्त्री-बुद्धि का परिचय दिया। उसने सुना कि शिवाजी पिता के लिए आत्म-

समर्पण करेंगे, तो उनको इस प्रकार से समझाना प्रारम्भ किया—"क्या आप सुलतान को आत्मसमर्पण कर अपने पिता—अर्थात मेरे पूजनीय ससुर की रक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे ? कदापि नहीं। वह आप को भी पकड़ लेगा, और दोनों ही का सर्वनाश करेगा। यह मुसलमानी चाल आज नई नहीं है। आप इनके कपट-जाल को जानते हुए भी उन पर विश्वास करनेको उद्यत हैं! मैं स्त्री होकर आपको उपदेश करने में समर्थ नहीं हूँ, किन्तु समय के परिवर्त्तनों को देखकर आप से प्रार्थना करती हूँ, कि भूल कर भी इन अविश्वासी यवनों का विश्वास न कीजिये। अब इस समय ऐसा यत्न सोचिये कि 'साँप मरे न लाठी टूटे', आप स्वतन्त्र भी रहें और आपके पिताजी भी बन्धन-मुक्त हो जायँ।"

पत्नी की ओजस्विनी वाक्शक्ति ने शिवाजी पर अद्भुत प्रभाव डाला। उन्होंने तत्काल आत्मसमर्पण का ध्यान त्याग दिया, और अन्य उपाय से पिता की रक्षा की युक्ति विचारी। उनका ध्यान दिल्लीश्वर की ओर गया। मन में विचारा कि बीजापुर की शाही और दिल्ली से कई बार खटक चुकी है। अतएव यदि सम्राट् शाहजहाँ से इस समय सहायता लूँ तो कदाचित् पिताजी की मुक्ति होजाय। शिवाजी को शाहजहाँ से सहायता मिलने की आशा थी, क्योंकि अभी तक शिवाजी ने मुग़ल-राज्य में हस्तक्षेप नहीं किया था, और दूसरे शिवाजी की वंश-वीरता से सम्राट् अच्छी तरह परिचित थे। शिवाजी ने पिता के उद्धार की प्रार्थना की, और उसे शाहजहाँ ने स्वीकृत कर लिया। इतना

ही नहीं उसने शाहजी की पूर्व विरोधिता को क्षमा कर शिवाजी को अपना अनुयायी बना पाँच हज़ार घोड़ों का मनसबदार भी बनाना चाहा, परन्तु शिवाजी की कुण्डली में परतन्त्रता के ग्रह नहीं पड़े थे। शाहजहाँ को प्रार्थना पत्र भेजने के साथ ही अन्य युक्तियों से भी वे पिता के छुड़ाने का यत्न करने लगे। दिल्ली से पत्रोत्तर आने के पूर्व ही शिवाजी अपने कार्य्य में सफलीभूत हो गये। आदिलशाही दरबार में उन्नतहृदय ब्राह्मण मन्त्री मुरारपन्त उपस्थित थे। मुरारपन्त शाहजी से आन्तरिक सहानुभूति रखते थे। वे शिवाजी की प्रार्थना की अपेक्षा न कर शाहजी के मुक्त कराने की चेष्टा करने लगे, और अन्त में सन् १६५२ में उन्होंने उनको इस असह्य कष्टदायी कारागार से छुड़ा कर चार वर्ष के लिये राजधानी में नज़रबन्द करा दिया।

शिवाजी ने जब पिता की रिहाई का समाचार सुना, तो उन्होंने दिल्लीश्वर का अनुचर होना उचित न समझा, परन्तु हठात् प्रस्ताव का फेर लेना भी राजनीति के विरुद्ध समझ कर ढिलाई से काम लेना आरम्भ किया। थोड़े दिनों बाद एक दूत द्वारा आगरे को लिख भेजा, कि यदि सम्राट् मेरे पिता को अहमदनगर और जूनार की पूर्व देशमुखी लौटा देवें, तो मैं दिल्लीश्वर की अधीनता स्वीकार करता हूँ। शाहजहाँ इस प्रस्ताव पर सहमत न हुए और उत्तर में लिख भेजा, कि यदि शिवाजी राजधानी में उपस्थित होवें तो उनके प्रस्ताव पर ध्यान दिया जायगा। शिवाजी ने राजधानी में जाना ठीक न समझा, अतः यह प्रस्ताव निर्मूल होकर पड़ा रह गया।

उधर सुलतान बड़ी आपत्ति में पड़े। शाहजी को नज़रबन्द कर के भी वे शिवाजी पर आक्रमण नहीं कर सके। इसका कारण केवल यह था कि सुलतान को शिवाजी की प्रार्थनादि का हाल मिल गया था। उन्होंने विचारा कि यदि शिवाजी मुग़लों से मिलकर अपनी अधिकृत भूमि दिल्लीश्वर को समर्पित करदें, तो मुग़ल एक दम ही मेरे राज्य के केन्द्र में आजायँगे और तब मेरा बचाव अति कठिन हो जायगा। शिवाजी की शक्ति-वृद्धि भी उनके लिये असह्य हो रही थी, अतएव उन्होंने स्वयं युद्ध में प्रवृत्त होने की अपेक्षा बलशाली जागीरदारों द्वारा शिवाजी का दमन करना उचित समझा। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये सुलतान को हिन्दू जागीरदार ही प्राप्त हो गये। इन हिन्दू जागीरदारों में बाजी श्यामराजे ❀ और चन्द्रराव मोरे शिवाजी के नाशहेतु अग्रगन्ता हुए। इतिहास में हिन्दुओं के लिये यह नई बात नहीं है। जिस समय मुहम्मदग़ोरी ने चौहान राजा पृथ्वीराज पर आक्रमण किया था, कन्नौज के राजा जय-चन्द ने उसको सहायता दी थी। जिसका फल यह हुआ, कि थानेश्वर के युद्ध में हिन्दू-साम्राज्य सदैव को विलीन हो गया। ऐसी एक घटना नहीं किन्तु अनेक घटनाएँ इतिहास से ज्ञात होती हैं, जिनसे इस बात का पता चलता है कि यवन सम्राटों ने हिन्दुओं को परस्पर लड़ा कर उनका सर्व नाश किया है, अतः उनकी यह चाल नई न थी।

❀ कोई कोई इनका नाम बाजी समरजी बतलाते हैं।

शाहजी सुलतान के कारागार से मुक्त तो हो गये परन्तु अभी पूर्ण स्वच्छन्द नहीं थे, अतएव शिवाजी को शाह की ओर से पूर्ण भय था कि कहीं ऐसा न हो, कि क्रुद्ध होकर वह शाहजी का शिरोच्छेदन करवा दे। शिवाजी इसी सोच विचार में थे कि कर्नाटक में अचानक घोर विद्रोह हो गया। शाहजी के क़ैद होने के बाद वहाँ की दशा बहुत बिगड़ गई थी। ज़मींदार और जागीरदार अपनी अपनी प्रधानता के निमित्त आपस में लड़भिड़ कर देश में अशान्ति फैला रहे थे। बीजापुर के दरबार ने कई एक शासक नियुक्त किये, परन्तु शान्ति स्थापन में कोई भी समर्थ न हुआ। प्रति दिन विद्रोह बढ़ता गया, और देश की दशा बिगड़ती गई। जब शाहजी के विना कर्नाटक को कोई भी शान्त न कर सका, तो शाह ने पुनः उनको वहाँ भेजा। भेजते समय शाह ने कह दिया था कि बाजी घोरपड़े से बदला लेने का यत्न न करना। शाहजी ने कर्नाटक पहुंच कर विद्रोह शान्त किया, परन्तु वह अपने ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी को खो बेठे।

सन् १६५३ में जब शाहजी कर्नाटक पहुंचे, तो उन्होंने शिवाजी को लिख भेजा "शिव! यदि तू मेरा पुत्र है, तो बाजी से अवश्य बदला लेना।" शिवाजी इस पत्र को पाकर परम प्रसन्न हुए। उधर कर्नाटक में उन्होंने देखा कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली बात हो रही है, तो शाहजी ने उसके दमन करने का यत्न किया। शान्ति स्थापन के लिये सेना सहित अपने पुत्र शम्भाजी को भेजा। शम्भाजी ने पहुंचते ही देखा कि अशान्ति का मूल

कारण कनकगिरि का दुर्गाध्यक्ष है, अतएव उन्होंने पहले इसी का विध्वंस करना विचारा। दुर्गाध्यक्ष भी उनके विचार को जान कर संग्राम-निमित्त आ डटा। दोनों दलों के एकत्र होते ही तुमुल युद्ध होने लगा। अस्त्रघातों से वीरों के शरीर छिन्न-भिन्न होकर इतस्ततः धराशायी होने लगे। स्वल्पकाल ही में सनसनाती हुई एक गोली शम्भाजी के वक्षःस्थल को विदीर्ण करती हुई निकल गई। शम्भाजी की प्राण रहित देह भूतल पर गिर पड़ी।* सेनापति के मरते ही समस्त सेना में हलचल मच गई। सेना के पैर उखड़ गये, और वह रणस्थल को छोड़ कर भाग खड़ी हुई। शाहजी ने जब अपनी पराजय का हाल सुना तो स्वयं वहाँ जाना विचारा। इस बार दुर्गाध्यक्ष की पराजय हुई। दुर्गाध्यक्ष को कराल काल के गाल में जाना पड़ा। वैर निर्यातन करने पर भी पुत्र की मृत्यु ने शाहजी के हृदय में नैराश्य उत्पन्न कर दिया। राज्य सम्बन्धी कार्यों में वे उदासीन रहने लगे, अतएव देश में शान्ति के स्थान पर पुनः अशान्ति का संचार होगया। बीजापुर की सरकार शाहजी के इस कार्य्य से असन्तुष्ट रही। उसको इस बात की शंका होने लगी कि शाहजी अपने पुत्र शिवाजी को सहायता दे रहे हैं, अतएव वे शिवाजी को दबाने का पूर्ण यत्न करने लगे।

---

* कहते हैं कि इस युद्ध में अफ़ज़लख़ाँ उपस्थित था। उसी की अनुमति से एक सैनिक ने ताक कर शम्भाजी पर गोली छोड़ी थी जिससे उनका प्राणान्त हुआ।

शिवाजी गत तीन-चार वर्षों से कोङ्कण देशान्तर्गत महर ग्राम में निवास करते थे। यह ग्राम सुरक्षित और मनोहर होने के कारण शिवाजी को अत्यन्त प्रिय था। यहीं रह कर शिवाजी अपने पिता के छुड़ाने का यत्न किया करते थे। यहाँ पर उन्होंने अपना धन और बल बहुत बढ़ा लिया था। पिता के बन्धन-काल से अब तक—अर्थात् सन् १६४८ से सन् १६५२ तक शिवाजी राज्य-वर्धन-कार्य में कुछ संकुचित रहे। उनको बारबार यही ध्यान आता था, कि यदि मैं बीजापुर-राज्य पर हाथ उठाऊँगा, तो आश्चर्य नहीं कि शाह क्रुद्ध होकर पिता का बध करवा डाले। परन्तु जब शाहजी मुक्त हो गये, तो वे पुनः स्वजातीय गौरव के उत्थान का यत्न करने लगे। शाहजी को कर्नाटक भेजकर शाहने बाजी श्यामराजे द्वारा शिवाजी का सौभाग्य-सूर्य ग्रसना चाहा।

बाजी श्यामराजे की घृणित इच्छा की पूर्त्ति में जाबालि जागीरदार भी सम्मिलित हुआ। जाबालि जगीरदार शिवाजी की अधिकृत भूमि के निकट था। चन्द्रराव उस जागीर में अर्ध-स्वाधीन राजा था। बाजी श्यामराजे अपने मनोरथ की सफलता के लियेससैन्य चन्द्रराव मोरे की जागीर में आपहुँचा। फारघाट में पहुँच कर उसने डेरे डाल दिये। यहीं चन्द्रराव से मिलकर गुप्त भाव से वे शिवाजी के बध करने की मन्त्रणा करने लगे, और इस आशा में अपना समय व्यतीत करने लगे, कि शिवाजी को एकाकी पकड़ कर और उनका सिर काट कर शाह के कृपा-

पात्र बनें। परन्तु मनुष्य जो विचारता है उसके पूर्ण करने में उसे सदा सफलता प्राप्त नहीं होती है। बाजी की दुष्ट प्रकृति से शिवाजी पहले ही से भली भांति परिचित थे। उसके फारघाट के निवास ने शिवाजी के हृदय में सन्देह उत्पन्न कर दिया। शिवाजी जिस स्थान पर रहते थे उसको वे केवल सेना ही से सुरक्षित नहीं रखते थे, किन्तु गुप्त दूतों द्वारा अड़ौस पड़ौस की व्यवस्था से भी परिचित रहते हुए अपनी अवस्था को दृढ़ रखते थे। शिवाजी के गुप्तचर प्रायः समस्त महाराष्ट्र में भ्रमण किया करते थे। क्या बीजापुर क्या कोकन सर्वत्र ही उनका एक न एक विश्वस्त गुप्त-चर रहता था। बाजी का बीजापुर को जाना तथा चन्द्रराव की जागीर में होकर फारघाट में डेरा डालना शिवाजी के गुप्तचरों से छिपा न था। शिवाजी को सन्देह तो पहले ही हुआ था, किन्तु जब गुप्तचरों द्वारा समस्त समाचार विदित होगया, तो उनका सन्देह और भी दृढ़ होगया।

अब शिवाजीने विचारा कि यदि श्यामराजे मैत्री भाव से आया होता, तो वह मुझ से अवश्य मिलता; और यदि वह अपने ही काम से आया होता, तो वह ऐसे गुप्त भाव से पड़ा न रहता। इस में कुछ न कुछ अवश्य गूढ़ रहस्य है। सन्देह दृढ़ होते ही शिवाजी ने उनका निरीक्षण करना आरम्भ कर दिया। प्रारम्भ करते ही शिवाजी को उसकी धूर्त्तता का पूरा पता लग गया। पूर्णतः उसका आन्तरिक मनोरथ जान कर शिवाजी ने एक रात्रि को अपने मित्रों को बुलाकर बाजी को ध्वस्त करने

की इच्छा प्रकट की। विश्वस्त मावली योद्धाओं को साथ लेकर कुछ रात्रि व्यतीत होने पर शिवाजी फारघाट के निकट पहुँच गए। शिवाजी ने गुप्तचरों द्वारा यह बात जानली कि बाजी की सेना सुषुप्तावस्था में है, अतः धीरे-धीरे चल वे उसके सन्निकट पहुँच गये। बाजी श्यामराजे उस समय मनोहर स्वप्न देख रहे होंगे। उस समय स्वप्न में कदाचित् यही देखते होंगे, कि शिवाजी का सिर काट कर वे सुलतान के पास पहुँच गये हैं। सुलतान भी शिवाजी का सिर देखकर अति प्रसन्न हो रहे हैं। पश्चात् पुरस्कार में उनको विस्तृत भूमि भाग दे सम्मानित कर रहे हैं। पर यहाँ तो दूसरी अवस्था थी। जिसका सिर काट कर वे सुलतान के पास ले गए थे वह स्वयं खड्ग लिये उन्हीं के सिर पर कृतान्त की तरह खड़ा हुआ था।

बाजी की सेना पर अचानक आक्रमण हुआ। हड़बड़ा कर बाजी के सैनिकों ने देखा, कि काल के सदृश वीर मावली उनके मध्य में भीषण रूप धारण किये हुए उनका सर्वनाश कर रहे हैं। विकट चीत्कार करती हुई बाजी की सेना भी उठ बैठी। दोनों में घोर युद्ध होने लगा, परन्तु वीर मावलियों से विजय-श्री का लेना वनराज के पंजे से मांस-पिण्ड का छीन लेना था। पापियों के हृदय सदा से ही निर्बल होते हैं। बाजी की सेना मावलियों के सम्मुख क्योंकर ठहर सकती थी? थोड़ी देर युद्ध करने के पश्चात् बाजी समर छोड़ कर पलायित हुआ। भागते हुए शत्रु को मारना नीति-विरुद्ध है, यह समझकर शिवाजी ने उसका

पीछा न किया। 'जान बची लाखों पाये' यही समझ कर बाजी प्रसन्न हुआ। समर भूमि से भाग कर जंगलों में छिपता हुआ भग्नाशा से बाजी बीजापुर पहुँचा। शिवाजी भी विजय-मुकुट धारण कर महर को लौट आये। अपना काला मुंह लेकर बाजी श्यामराजे सुलतान के पास जा पहुँचा। सुलतान भी समस्त हाल सुन कर जल भुन गये, परन्तु करते क्या ?

शिवाजी को चन्द्रराव की ओर से भी भय रहता था, और उस भय को सुहृद् भाव में परिवर्त्तित करने के लिये शिवाजी ने अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उनका सारा परिश्रम विफल हुआ। चन्द्रराव अपने को चाणक्य का सहोदर भ्राता समझता था, अतएव शिवाजी भी उसकी ओर से चौकन्ने रहते थे। प्रकट में तो वह शिवाजी से प्रेम-भाव रखता, परन्तु भीतर ही भीतर वह उनकी जड़ काटने का प्रयत्न करता। शिवाजी की आँखों से उसका यह चाणक्यपन छिपा न रहसका। यवन-नरेश-प्रेरित श्यामराजे जो शिवाजी के वध करने के निमित्त आया था, उसे टिकाकर चन्द्रराव ने शत्रु-भाव का परिचय दिया था। परन्तु शिवाजी ने इस पर अधिक ध्यान न देकर उसे अपना मित्र बनाये रखना चाहा। स्वजातीय शत्रु को पहले मित्र बनाने का यत्न शिवाजी सदा करते थे। यह उनका जातीय प्रेम सूचक नियम था। जब चेष्टा में वे विफल होते थे, तो उग्ररूप धारण कर उसकी शक्ति का ध्वंस करते थे। शिवाजी ने अपने दूतों द्वारा हिन्दुओं की वर्त्तमान अवस्था दिखलाते हुए उनके हृदय में यवन-

द्वेष-वह्नि भड़काने का यत्न किया, परन्तु उसके कलुषित हृदय में स्वदेश-भक्ति-सूचक मन्त्र स्थान प्राप्त न कर सका, प्रत्युत उसने गुप्त रूप से शाह की सहायता करनी आरम्भ कर दी शिवाजी ने ये सब बातें जानकर जावालि का दमन करना ही ठीक समझा। शिवाजी ने चन्द्रराव को लिख भेजा कि श्यामराजे अपनी सेना सहित बीजापुर की ओर गया है। मैं उसका पीछा करना चाहता हूँ, इसलिये मेरी सेना आपकी जागीर से होकर जायगी। आप उसके निमित्त अन्नादि का प्रबन्ध कर दीजियेगा। भक्ष्य पदार्थों का देना तो दूर रहा उसने जागीर से सेना के जाने की भी आज्ञा न दी। उसको इस बात का भय था कि अतिक्रम करने वाली सेना कहीं हमारी ही जागीर को हड़प न कर जाय। उसके निषेध ने शिवाजी की इच्छा को पूर्ण कर दिया। परन्तु इस समय वे खुल्लमखुल्ला चन्द्रराव से युद्ध करना नहीं चाहते थे। उसका सैन्य-बल शिवाजी से किसी प्रकार न्यून न था, परन्तु तो भी इस स्वदेश-शत्रु की जागीर पर हस्तक्षेप करना अति प्रयोजनीय था। हिन्दू कुल कलंक चन्द्रराव अपने सैन्य-बल पर गर्वित होता हुआ शिवाजी का सामना करने को उद्यत था। इस समय उसके राज्य को हस्तगत कर लेना कुछ हँसी ठट्ठा न था, क्योंकि उसकी जागीर एक विशाल सेना से सुरक्षित थी। उसके यहाँ अच्छे-अच्छे अश्वारोहियों की कुछ कमी न थी। मावलियों की भाँति उसकी सेना भी अति प्रचण्ड थी। इसके कारण शिवाजी का जावालि पर विजय पाना कुछ सहज काम न था, अतएव उन्होंने

विचारा, कि कोई ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे चन्द्रराव यवनों का साथ न दे सके, और हमारी कामना का बाधक भी न होवे। इस विचार की पूर्ति के लिये उन्होंने रघुबल्लाल नामक एक ब्राह्मण को पच्चीस मावलियों सहित जाबालि भेजा। उन्होंने जाबालि पहुंच कर चन्द्रराव से कहा कि शिवाजी आपसे विवाह सम्बन्ध करना चाहते हैं। प्रत्यक्ष में तो यह बतलाया गया, किन्तु आभ्यन्तरिक भाव उसके बलाबल का परिचय लेना था।

चन्द्रराव ने आवभगत तो खूब दिखाई, परन्तु हृदय में वह शंकित ही रहा। दो-तीन दिन के बाद उसने आतिथ्य सत्कार में भी हाथ ढीला कर दिया, और बात-चीत में वह कुछ अनिच्छा प्रकट करने लगा। तब तो शिवाजी के दूत को अतीव क्रोध आया। प्रति दिन का असत्कार उनके क्रोधानल में घृताहुति का काम करने लगा। अन्त में उसका फल यह हुआ कि रघुबल्लाल ने एक दिन शस्त्राघात कर चन्द्रराव और उसके भाई को यमपुरी पहुंचा दिया। उस भीषण कर्म्म के उपरान्त जीवन-रक्षणार्थ रघुबल्लाल शत्रु-पुरी से भाग कर महाबलेश्वर आया। यहाँ आकर उसने समस्त समाचार शिवाजी के पास भेजे *। शिवाजी ने जाबालि पर आक्रमण किया, परन्तु जाबालि-मंत्री

---

* इतिहासकारों ने इस विषय पर लिखा है कि राजा तथा राज-सहोदर रघुबल्लाल सहित एक घर में बात चीत कर रहे थे। वहीं पर यह हत्याकाण्ड हुआ था। शिवाजी ने रघुबल्लाल के कर्म पर असन्तोष प्रकट किया था।

हिम्मतराव और मोरे के पुत्रों ने बड़ी वीरता से शिवाजी का सामना किया। युद्ध में हिम्मतराव पञ्चत्व को प्राप्त हुए, और लड़के शिवाजी के हाथ बन्दी हुए। इसके उपरान्त वसोता+के दुर्गाध्यक्ष को पराजित कर उन्होंने जाबालि पर पूर्ण अधिकार कर लिया। शिवाजी के व्यवहार से सब लोग परम प्रसन्न हुए, परन्तु पुत्रों ने बीजापुर को लिख भेजा कि शिवाजी ने हम लोगों की बहुत दुर्दशा की है। उसके निमित्त उन्होंने शाह से शिवाजी के मार भगाने के लिए सहायता माँगी। शिवाजी ने जब यह सब हाल सुना, तो उन्होंने विचारा कि ऐसे कण्टकों का रहना सर्वथा अनुचित है। उन्होंने उनके प्राणदण्ड की आज्ञा देकर शान्ति स्थापित की।

शिवाजी धोखे में शत्रु का बध करना अति अनुचित समझते थे। अतएव उन्होंने रघुबल्लाल के अब्राह्मणोचित कर्म पर असन्तोष प्रकट कर उनको अपनी मुसलमान सेना का अधिपति बना दिया। रघु-सदृश अधीर पुरुषों का यवनों से ही संसर्ग अच्छा रहेगा, यही विचार कर शिवाजी ने ऐसा किया था, क्योंकि दोनों की प्रकृति एकसी है। यहाँ पर पाठकगण चौंके होंगे, कि शिवाजी के सैन्य में मुसलमान कहाँ से आ गये? शिवाजी कट्टर हिन्दू थे, और हिन्दू धर्म्म पर उनका दृढ़ विश्वास था, उन्होंने हिन्दू धर्म और स्वतन्त्रा के लिये यवनों से युद्ध

+वसोता का नाम बदल कर शिवाजी ने उसका नाम वज़ीरगढ़ रक्खा था।

करने के लिये डंका भी बजाया था, परन्तु उनका कुछ मुहम्मदी मत से द्वेष न था। वे वीरों का एकसा आदर करते थे। शिवाजी में ही केवल यह बात न थी, किन्तु उनके पूर्व पुरुषों में भी यह गुण था। शिवाजी ने न तो क़ुरान जलवा कर हम्माम गरम किये थे, और न उन्होंने मसज़िदें तुड़वाकर उनके स्थान पर मन्दिर बनवाये थे। ये समस्त गुण औरंगज़ेब सदृश यवन सम्राटों में ही पाये गये हैं, अतएव धर्म्मान्ध मुसलमानों को छोड़ कर सब ही शिवाजी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। मुसलमानी सेना में प्रायः अधिक लोग वे ही थे, जिन्होंने किसी कारण से हिन्दू-धर्म-पथ त्याग कर मुसलमानी मत ग्रहण कर लिया था, परन्तु उनकी सहानुभूति अपने पूर्व धर्म पर थी।

जाबालि के विजय करने के पश्चात् वहाँ का राज्य कार्य शिवाजी ने अपने हाथ में लिया। प्रजा को सब प्रकार से सुखी और प्रसन्न रखने के लिये उन्होंने किसी प्रकार की भी त्रुटि न की। शीघ्र ही जाबालि वासी शिवाजी के सद्व्यवहार से अति प्रसन्न होगये। यह परिवर्त्तन उनको सुखकर प्रतीत होने लगा। कुछ दिनों पश्चात शिवाजी को यह ज्ञात हुआ कि जाबालि-जागीर के अड़ोस-पड़ोस के जागीरदार और नायकगण चन्द्रराव से सहानुभूति रखते हैं, अतएव शिवाजी उनकी ओर से कदापि निःशंक नहीं रह सकते थे। इन सबों में रोहिरा का दुर्गाध्यक्ष बन्दल भी था। विरोधाचरण के कारण वह शीघ्र ही शिवाजी की क्रोधाग्नि में आहुति होगया। एक दिन मावलियों ने उसके गढ़ पर आक्रमण कर ही

दिया। दुर्गवासी प्राणपण से गढ़ की रक्षा करने लगे। दुर्ग में सैनिकों को उत्तेजना देने वाले बन्दल के सहायक बाजीप्रभु देशपाण्डे भी थे। थोड़ी देर के युद्ध में दुर्गाधीश का सिर धड़ से पृथक् होगया। अध्यक्ष की मृत्यु से सेना में हलचल मच गयी, परन्तु वीर बाजी प्रभु किंचित भी विचलित न होकर स्थानभ्रष्ट न हुआ। शिवाजी की सेना के आक्रमणों को वह बराबर रोकता रहा। रोकते-रोकते उसका शरीर क्षतविक्षत होगया, परन्तु वह अपने स्थान से तिल भर भी न हटा। अनेक योद्धा भूतलशायी होने लगे, परन्तु बाजीप्रभु पूर्ववत् अपनी सेना को उत्तेजना देता रहा।

दूर खड़े हुए शिवाजी उनके विलक्षण धैर्य्य और प्रभु-भक्ति को देख रहे थे। अपने साथियों से बाजीप्रभु की प्रशंसा करते हुए शिवाजी ने यह विचारा, कि यदि ऐसा वीर पुरुष हम को मिल जाय तो बड़ा काम निकलेगा। शिवाजी ने देखा कि दुर्ग-रक्षा में वह अक्षम है, परन्तु साथ ही अपने प्राणों को देकर भी वह अपने स्थान से नहीं हटेगा। ऐसे वीर का पृथ्वी पर से उठ जाना ठीक नहीं है। यह विचारकर शिवाजी ने एक दूत को उनके पास भेजा। दूत ने जाकर उनसे कहा कि दुर्ग की रक्षा होना अब नितान्त असम्भव है और शिवाजी गुण ग्राहक हैं, अतएव अब तुम आत्म समर्पण करदो। बाजीप्रभु पहले ही से शिवाजी की वीरता से परिचित था। उसकी स्वयं यह इच्छा थी कि उसको कोई ऐसा अवसर प्राप्त हो कि देश की सहायता के निमित्त वह

शिवाजी के साथ रह सके। उसने विचारा कि इस से बढ़ कर और कोई सुअवसर नहीं मिल सकता है। यही विचारकर उसने आत्म समर्पण कर दिया। छाती से लगाते हुए शिवाजी ने बाजीप्रभु से कहा कि 'आज से तुम मेरे सहायक ही नहीं किन्तु मित्र भी होगये। देखो, मैं इस समय पददलित भारतभूमि को यवनों से बचाने के लिये उद्यत हुआ हूँ! ऐसे समय हिन्दूमात्र को मेरी सहायता करना उचित है। तुम वीर हो, स्वामिभक्त हो, अतएव मुझ को तुम से सब प्रकार की आशा है।' शिवाजी की प्रेममयी वाणी को सुनकर मरणासन्न बाजीप्रभु का हृदय खिल गया। जोश में आकर उसने कहा 'वीरवर! यह शरीर अब आपका है। यदि यह शरीर आपकी और देश की सहायता के निमित्त काम आ सकेगा, तो मैं अपने क्षुद्र जीवन को सार्थक समझूँगा।' शिवाजी ने ऐसे वीरपुङ्गव को सदा अपने साथ रखने का दृढ़ निश्चय किया। बाजीप्रभु भी आजन्म देश-सेवा में तन-मन से लगे रहे।

इस के उपरान्त शिवाजी ने नए जीते हुए देशों की रक्षा के लिये कृष्णातट के विशाल पर्वत शृङ्ग पर वृहत् दुर्ग निर्माण कराने की आवश्यकता समझी। दुर्ग-निर्माण कराने का भार मोरो त्रिमल पिंगले नामक एक सुयोग्य ब्राह्मण कुमार पर पड़ा, और देश का शासन भार मन्त्रीवर श्यामराजे पन्त को अर्पण किया गया। पिङ्गले ने दुर्ग तैयार करा दिया। शिवाजी ने उसका नाम प्रतापगढ़ रक्खा। श्यामराजे ने अपने पदपर ऐसी सुख्याति प्राप्त

कर ली कि शिवाजी ने प्रसन्न होकर सन् १६५६ में उन्हें पेशवा की उपाधि से सुशोभित किया। श्यामराजे शिवाजी की सेना के एक सेनानी भी थे। उपर्युक्त विजयों से शिवाजी की राज्य-सीमा प्रतापगढ़ के दक्षिण भाग से लेकर पन्हाल तक विस्तृत हो गई थी। कोकण का दक्षिणी भाग जिस में पालविस् तथा सुर्वी वंशी जागीरदार थे शिवाजी के अधिकार में आगया था। शिवाजी ने सीदी के सूबे पर आक्रमण किया, परन्तु उस समय उसका कुछ फल न निकला।

इन घटनाओं के पश्चात् शिवाजी का बीजापुर से खुल्लम-खुल्ला युद्ध छिड़ गया जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा।

---

## नवम परिच्छेद

# मुग़लों से प्रथम मुठभेड़

शिवाजी की मुग़लों से मुठभेड़ का हाल लिखने के पहले मुग़लों की दक्षिण में क्या दशा थी यह वर्णन कर देना ठीक है। मुग़ल सम्राटों में सबसे पहले अकबर ने दक्षिण में हस्तक्षेप किया था। उन्होंने खानदेश, असीरगढ़, और बरार को मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। अहमदनगर का दुर्ग भी मुग़लों के हाथ में आ गया था। बीजापुर और गोलकुण्डा ने भी अकबर के आतंक में आकर कुछ कर देना स्वीकार किया था। जहाँगीर ने भी दक्षिण में मुग़ल अधिकार बढ़ाने की चेष्टा की थी, परन्तु उसे सफलता न हुई। अहमदनगर एक बार मुग़लों के हाथ से निकल गया था, परन्तु उस पर पुनरधिकार कर लिया गया था। जिस समय शाहजहाँ मयूर-सिंहासन पर सुशोभित हुए, उस समय निज़ामशाही का अन्त हो गया। गोलकुण्डा और बीजापुर ने मुग़ल-आधिपत्य* स्वीकार कर लिया। मई सन् १६३६ में शाहजहाँ का तृतीय पुत्र औरंगज़ेब प्रथमवार दक्षिण का

---

* आधिपत्य का तात्पर्य्य यह नहीं है कि उक्त राज्यों की स्वच्छन्दता में कुछ विघ्न पड़ा हो।

सूबेदार होकर आया। इस समय औरंगज़ेब की अवस्था १८ वर्ष की थी। दक्षिण में आकर उसका प्रथम कार्य्य यह हुआ, कि उसने शक्तिहीन अहमदनगर के अन्तिम सुलतान को, जिसको शाहजी ने इस पद पर आसीन किया था बन्दी किया और उसे ग्वालियर के दुर्ग में भेजकर निज़ामशाही का नाम मिटा दिया। सन् १६४३ में औरंगज़ेब इस पद को त्याग कर चला गया। अपने प्रथम शासन काल में उसने केवल बागलान प्रदेश को जीता था। इस समय दक्षिण में मुग़ल साम्राज्य दौलताबाद, तेलिंगाना, खानदेश और बरार तक पहुंच गया था। पश्चिमी घाट का भी कुछ भाग मुग़लों ने हथिया लिया था।

सन् १६५५ में औरंगज़ेब पुनः दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। बीजापुर और गोलकुण्डा पूर्ववत् कर देते रहे थे। इस बार औरंगज़ेब का प्रथम आक्रमण गोलकुण्डा पर हुआ। इस समय गोलकुण्डा राज्य का वज़ीर मीर जुमला था। नव्वाब अब्दुल्ला से उसकी न पटी, अतएव उसको वहाँ से भागना पड़ा। मीर जुमला वहाँ से भाग कर औरंगज़ेब की शरण में आया। औरंगज़ेब ने मीर जुमला के ऊपर नव्वाब द्वारा अत्याचार का बहाना लेकर गोलकुण्डा पर आक्रमण किया। सम्राट् शाहजहाँ ने औरंगज़ेब के इस काम पर असन्तोष प्रकट किया, परन्तु जब औरंगज़ेब ने मीर-जुमला को राजधानी भेजा, और सम्राट् से उसकी बात चीत हुई, तो शाहजहाँ ने औरंगज़ेब की नीति का समर्थन किया। गोलकुण्डा की पराजय हुई। शाह अब्दुल्ला को

औरंगज़ेब के निश्चित किये हुए सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े। सन्धि-पत्र में अब्दुल्ला को इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ी थी, कि दिल्लीश्वर का आधिपत्य स्वीकार कर वह उनके नाम का सिक्का ढलवा देगा, और औरङ्गज़ेब के ज्येष्ठ पुत्र के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देगा*। कर स्वरूप में उसको दस लक्ष रुपया वार्षिक देना पड़ेगा‡। सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद औरङ्गज़ेब औरङ्गाबाद + को चला गया। वहाँ जाकर उसने बीजापुर से बीदर दुर्ग छीन लेना विचारा। मीर-जुमला इस समय आगरे से लौट आया था। औरङ्गज़ेब से औरङ्गाबाद में मिल कर उसने बीजापुर पर चढ़ाई की। चढ़ाई का फल यह निकला, कि कल्याणी और कलवर्गा मुग़ल राज्य में आगये। अब हम उस समय पर आगये हैं, जब कि शिवाजी ने जाबालि-जागीर को जीत लिया था।

मुग़लों से शिवाजी के वंश का नाम मात्र का सम्पर्क रहा। शाहजी एक बार मुग़लों की अधीनता में चले गये थे। इसके

* किसी-किसी का यह भी मत है कि औरङ्गज़ेब ने इस बात की प्रतिज्ञा कराई थी, कि वर्त्तमान शाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शाह होगा।

‡ यदि औरङ्गज़ेब का वश चलता तो यह सन्धि कदापि न होती। उसकी इच्छा यही थी कि गोलकुण्डा का नाम निशान ही मिटा दिया जाय, परन्तु सम्राट् की ऐसी इच्छा न थी।

+ दक्षिण में उस समय औरंगाबाद ही मुग़लों की राजधानी थी।

६

उपरान्त वे बीजापुर चले आये। परन्तु जिस समय शाहजी को बीजापुर के शाह ने शङ्कित होकर वहाँ बन्दी कर लिया था, उस समय शिवाजी ने उनको मुक्त कराने के लिए शाहजहाँ के पास प्रार्थना-पत्र भेजा था, जिसका उल्लेख गत परिच्छेद में किया जा चुका है। अपना काम पूरा हो जाने से शिवाजी ने शाहजहाँ की बात पर ध्यान देना आवश्यक न समझा, अतएव वह बात वहीं रह गई। थोड़े दिनों के पश्चात् उत्तरी भारत में महान् परिवर्त्तन हुआ। सन् १६५६ में शाहजहाँ रोगग्रस्त हुए। रोग के कारण वे कई दिनों तक दरबार में उपस्थित न हो सके। उनकी अनुपस्थिति से दरबारियों के हृदय में शङ्का उत्पन्न होगई। उनको भासित होने लगा, कि दारा ने विष-प्रयोग द्वारा सम्राट् के प्राण हरण कर लिये हैं। मुसलमान दरबारी प्रायः दारा के अभिमान, एवं उद्धत स्वभाव के कारण उससे अप्रसन्न और असन्तुष्ट रहते थे। दारा का हिन्दू धर्म की ओर प्रेम देखकर कट्टर मुसलमान उससे भीतरी द्वेष रखते थे। वे समझते थे कि यदि यह क़ाफ़िर शाहंशाह हो जायगा, तो हम लोगों की कुशल नहीं है। दारा को भी ऐसे मनुष्यों से घृणा थी। इन सब कारणों से दरबार में दो विभाग हो गये थे। दरबारियों का वह भाग, जिसमें कट्टर मुसलमान सम्मिलित थे, औरंगज़ेब को दिल्लीश्वर बनाना चाहता था, और द्वितीय भाग जिसमें शाहजहाँ की पुत्री जहानआरा सम्मिलित थी, दारा को दिल्ली के मयूरसिंहासन पर आरूढ़ देखना चाहता था। इसमें यशवन्तसिंह आदि भी थे।

सम्राट् के शय्याशायी होने के उपरान्त औरंगज़ेब के पास पत्र प्रेषित किये जाने लगे। उनको लिखा गया कि यदि आप उचित समय पर नहीं आजायँगे, तो दारा दिल्लीश्वर हो जायगा, और पाक मुहम्मदी धर्म का विनाश हो जायगा। उसका गद्दी पर बैठने के साथ ही साथ हम लोगों के जीवनकाण्ड की समाप्ति भी हो जायगी। इस समय औरंगज़ेब बीजापुर से युद्ध कर रहा था। शाहज़ादा मुराद शराब में मस्त गुजरात के प्रदेशों में आनन्द पूर्वक आखेट कर रहा था। वीर शुजाअ् बंगाल में था। सम्राट् का प्रिय पुत्र होने के कारण दारा दिल्ली ही में रहता था। सम्राट् की भी यही इच्छा थी, कि मेरे बाद दारा ही इस सल्तनत का शासक बने। थोड़े ही दिनों में शाहजहाँ की मृत्यु की झूठी खबर देश भर में फैल गई। दूरस्थित शुजाअ् और मुराद भी सचेत हो गये। औरंगज़ेब ने भी बीजापुर छोड़ने का विचार किया, परन्तु वह बड़ी अड़चन में पड़ा। वह जानता था कि मुहम्मद आदिलशाह से दारा की मैत्री है। ऐसे समय में यदि वह दारा का पक्ष ग्रहण करेगा, तो मैं बड़ी आपत्ति में पड़ जाऊंगा। सामने से दारा और पीछे से मुहम्मद आदिलशाह मुझे भून डालेंगे। औरंगज़ेब के सौभाग्य से सन् १६५६ ई० में मुहम्मद आदिलशाह काल के गाल में जा पड़े, और उनके स्थान पर अली आदिलशाह तख़्त पर बैठे। परन्तु इस शाह से भी औरंगज़ेब को वही भय था, अतएव आदिलशाह की तख़्तनशीनी पर उसने आपत्ति की। उसने कहला भेजा, कि तुम किसी अवस्था में बीजापुर के तख़्त पर नहीं

बैठ सकते हो। इसका कारण उसने यह बतलाया, कि जब तुम दिल्लीश्वर का आधिपत्य स्वीकार कर चुके हो, तो विना दिल्लीश्वर की आज्ञा के सिंहासनारूढ़ क्योंकर होगये हो। तुमने यह कार्य्य सम्राट् की इच्छा के प्रतिकूल किया है। दूसरा कारण उसने यह बतलाया, कि तुम बीजापुर के राजसिंहासन के उचित उत्तराधिकारी नहीं हो, क्यों कि सम्राट् को तुम्हारे औरस पुत्र होने में सन्देह है। तुमको चाहिये कि या तो तुम सम्राट् की आज्ञा मँगाओ, या तख्त ख़ाली करो। परन्तु आदिलशाह ऐसी धमकी कब मान सकते थे। भला हाथ में आये हुए तख़्त को कौन मूर्ख छोड़ देने को तैयार होगा? निदान उन्होंने औरंगज़ेब की बात पर किंचित् ध्यान न दिया। फिर क्या था सहस्रशः मुग़ल सेना बीजापुर पर चढ़ आई। कूट नीति-विशारद औरंगज़ेब ने स्वदेश-द्रोहियों का अनुसंधान करना प्रारम्भ कर दिया। भीरु विभीषणों की कमी वहाँ न थी। गृह-भेदियों से औरंगज़ेब ने बहुत सहायता प्राप्त की। मुग़लों के अचानक आक्रमण ने अली आदिलशाह को स्तम्भित कर दिया। यद्यपि श्रीजी घाटे, बाजी घोरपड़े और निम्बा-लकर ने भी बीजापुर को सहायता दी, परन्तु वे मुग़लों के सम्मुख टिक न सके। आदिलशाह का गर्व खर्व होगया। नम्रभाव धारण कर उसने सन्धि के लिये प्रार्थनापत्र भेजा। प्रार्थनापत्र में एक कोटि मुद्रा देने की भी प्रतिज्ञा थी, परन्तु औरंगज़ेब वह मनुष्य न था जो बीजापुर को विना ध्वस्त किये छोड़ देता।

इसी समय औरंगज़ेब को दिल्ली के समाचार मिले तो उसे बड़ी

चिन्ता हुई। यदि वह दिल्ली की ओर बढ़ता है तो जीता हुआ बीजापुर हाथ से जाता है, और यदि बीजापुर में रहता है, तो दारा भारत का सम्राट् हुआ जाता है। 'भई गति सांप छछूंदर केरी' वाली कहावत चरितार्थ होगई। वह इसी विचार में संलग्न था, तभी उसको खबर लगी कि बंग देश से वृहत् सेना सहित शुजाअ् दिल्ली की ओर बढ़ रहा है। उधर गुजरात से मुरादबख़्श भी ससैन्य दिल्ली को जा रहा है, और दारा इन दोनों को रोकने का प्रयत्न कर रहा है। औरंगज़ेब ने बीजापुर को छोड़ना विचारा। बीजापुर से सन्धि कर, वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। उसने विचारा, कि यदि इस समय हमको शिवाजी की सहायता मिल जाय तो बड़ा काम चले*। अतएव उसने शिवाजी को लिख भेजा, कि जो पत्र तुमने सम्राट् शाहजहाँ को लिखा था उसकी सब शर्तें मुझे मंज़ूर हैं, अतएव तुमको पूर्व प्रतिज्ञानुसार अश्वारोहियों सहित नर्मदा के दक्षिणी भागों की रक्षा करनी चाहिये, और थोड़े से अश्वारोहियों सहित सम्राट् की सहायता करनी चाहिये। पत्र के देखते ही शिवाजी ने औरंगज़ेब के हृदय की थाह पाली। प्रत्युत्तर में शिवाजी ने औरंगज़ेब को लिख भेजा कि "मेरी सेना विद्रोहाचरण में भाग नहीं ले सकती है?" औरंगज़ेब प्रतिकूल उत्तर पाकर चुप हो गया। इस समय औरंगज़ेब के हृदय में

* शिवाजी की शक्ति से औरंगज़ेब इस समय परिचित होगया था। शिवाजी की युद्ध-कुशलता ही के कारण वह उनको अपनी सहायता के लिये चाहता था।

शिवाजी के प्रति विशेष द्वेष उत्पन्न हुआ। पुत्र मोअज्ज़म को दक्षिण में छोड़ कर औरंगज़ेब अपने कपट जाल में मुराद को फाँसने चला। मुरादबख़्श उसके चुँगल में फँस गया, जिसके कारण उसे मौत का शिकार बनना पड़ा। सामूगढ़× के विशाल क्षेत्र में औरंगज़ेब ने जय पाई, और दारा पराजित होकर भाग गया।

शिवाजी ने इस समय विचारा कि असत् कार्य में सहायता न देने के कारण औरंगज़ेब क्रोधित तो हो ही गया है, अतः वह समय अति समीप है, कि जब हमको इसके साथ युद्ध करना पड़ेगा, अतएव हमको सब प्रकार से युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिये। उन्होंने स्वतः ही मुग़ल प्रान्त पर आक्रमण करना विचारा। इसमें उन्होंने दो बातें सोची थीं, प्रथम तो आक्रमण से कुछ धन प्राप्त हो जायगा, और दूसरे औरंगज़ेब को ज्ञात हो जायगा कि शिवाजी ने सहायता देने के बदले क्या किया है? यह प्रथम ही मौक़ा था कि महाराष्ट्र केसरी ने उन मुग़लों पर आक्रमण करने का विचार किया, जिनके प्रचण्ड प्रताप ने अहमदनगर का गर्व खर्व किया था, जिन्होंने बहादुरशाह सरीखे गुजरात-नरेश को धूल में मिला दिया था, जिनके यहाँ यशवन्तसिंह और जयसिंह जैसे वीर सेनानी का काम कर रहे थे। शिवाजी के इस विचार का शिकार मुग़लों का जूनार नगर ही हुआ। इस समय तक मुग़ल राज्य की प्रजा अपने को महान् शक्ति द्वारा

× सामूगढ़ को बा० हरिश्चन्द्र ने श्यामगढ़ के नाम से पुकारा है।

शासित होने के कारण निरापद समझती थी। परन्तु सन् १६५७ के मई मास की एक रात्रि को नगर में खलबली पड़ गई। सहसा नगर वासी चकित मृगों की भाँति महाराष्ट्र सिंहों से घिर गये। देखते ही देखते मावलियों ने नगर को लूट लिया। शिवाजी को इस नगर में बहुत-सा धन, बहुमूल्य वस्त्र, और चारसौ अश्व प्राप्त हुए। प्राप्त धन को उन्होंने रायगढ़ भिजवा दिया। शिवाजी इतने से ही शान्त न हुए, उन्होंने अहमदनगर तक धावे मारने शुरू कर दिये। इन आक्रमणों में शिवाजी का ध्यान पीढ़ा की ओर गया। ध्यान का जाना था कि तुरन्त अश्वारोहियों ने पीढ़ा जा दबाया। मावलियों के आक्रमण से पीढ़ावासी भाग खड़े हुए। इस बार मुग़लों ने शिवाजी पर पीछे से हमला किया, परन्तु मरहटे किंचित् भी विचलित न होकर युद्ध करने लगे। अन्त में मुग़ल भाग गये। शिवाजी को इस लूट में ७०० अश्व, ४ हाथी और बहुत-सा धन मिला। शिवाजी के इस समय के मुग़ल प्रदेशों के आक्रमणों में यह अन्तिम आक्रमण था। इसके पीछे शिवाजी और कामों में लगे। अपरिमित धन संग्रह कर शिवाजी पूना लौट आये। आते ही सेना और अश्वों का संग्रह अति शीघ्रता से करने लगे। अब उन्होंने दो और सेनाएँ बनाईं। एक का नाम 'बारगीज़' और दूसरी का नाम 'सिलीदार'* रक्खा। ये नवीन सैनिक नेताजी पाल्कर की अधीनता में रक्खे गये।

---

*यह नाम प्राचीन है। बहमनी राज्य के समय में एक सेना इसी नाम से सम्बोधित होती थी।

शिवाजी की इस नूतन शक्ति-वृद्धि को देख कर बीजापुर के शाह को फ़िक्र होने लगी। उनको भासित होने लगा, कि एक न एक दिन मरहटों की ध्वजा बीजापुर पर भी फहरावेगी। इसी विचार के कारण बेचारे का रक्त प्रति दिन सूखता जाता था। अब उसने विचारा कि औरंगज़ेब भी शिवाजी से बिगड़ गया है। ऐसे समय में औरंगज़ेब से सन्धि कर अपने को सुदृढ़ और सुरक्षित कर लूं। जिस समय बीजापुराधीश विना औरंगज़ेब से सन्धि किये हुए अपना निस्तार नहीं देखते थे, उस समय औरंगज़ेब मुराद सहित आगरे पहुंच गया था। दुराशा की अवस्था में दारा भी राजपूताने की मरूभूमि में भ्रमण करता हुआ, राज्य प्राप्त करने के यत्न में लगा हुआ था। मुरादबख़्श का अन्त कर और पिता को कारागार में डाल कर सन् १६५८ में औरंगज़ेब मयूर सिंहासन पर बैठा। उसके हृदय में दारा और शुजाअ् विष-कण्टक की तरह चुभते थे। जिस समय यह सब हाल शिवाजी ने सुना, तो उन्होंने ख़्याल किया कि जिस मनुष्य ने अपने हाथों को भ्रातृरक्त से रंजित किया है, जिस दुराचारी ने पितृस्नेह को त्याग कर अपने पूजनीय पिता को कारागार में डाला है, उसके साथ सुहृद्भाव रखना नितान्त मूर्खता है।

शिवाजी औरंगज़ेब की बढ़ती हुई शक्ति को भी देख रहे थे, अतएव उन्होंने उसको इस समय चिढ़ाना उचित न समझा। बीजापुर-शाह ने भी दिल्ली से सन्धि कर ली थी, अतएव ऐसे समय में सैनिकों का रक्त बहाना अदूरदर्शिता का

काम था। इन्हीं कारणों से शिवाजी ने थोड़े दिनों के लिये मुग़ल सम्राट् से सन्धि कर शान्ति रखना उचित समझा। अतएव उन्होंने रघुनाथपन्त को पत्र सहित दिल्ली भेजा। उस पत्र में उन्होंने मुग़ल-प्रदेश पर आक्रमण करने का पश्चात्ताप प्रकट किया था, और साथ ही साथ भविष्य में सहायता सम्बन्धी सन्धि भी स्वीकार कर ली थी*। जब शिवाजी ने जाना कि बीजापुर और दिल्ली में सन्धि हो गई, तो उन्होंने कृष्णाजी भास्कर को पीछे से भेजा। इस बार के सन्धि-प्रस्ताव में उन्होंने इतना और जोड़ दिया था, कि मेरी पैतृक जागीर और देशमुखी यदि मुझे लौटा दी जायँ, तो मैं इसके बदले सम्राट् के दक्षिणी सूबों की रक्षा करता रहूँगा। दिल्ली पहुँच कर दूत ने औरंगज़ेब के सम्मुख शिवाजी के सन्धि प्रस्ताव उपस्थित किये। प्रस्ताव उपस्थित करते समय उसने इतना और कहा, कि कोङ्कण देश जो बीजापुर की अमलदारी में है सब प्रकार अरक्षित है, यदि वह प्रदेश शिवाजी को सौंप दिया जाय, तो मुग़ल राज्य को बहुत लाभ होगा।

औरंगज़ेब ने बीजापुर से सन्धि करली थी, परन्तु शिवाजी

---

* वास्तव में शिवाजी ने उस समय सन्धि कर अपनी राजनैतिक बुद्धि का परिचय दिया था। यदि उस समय वे सन्धि न करते तो बीजापुर अवश्य ही उनकी शक्ति नष्ट करने का उद्योग करता, और औरङ्ग़ज़ेब शिवाजी की शक्ति के नाश करने में अवश्य सहायता देता, क्योंकि वह स्वयं शिवाजी से असन्तुष्ट था।

को भी वह छोड़ना नहीं चाहता था। एक बार मुँह का कौर उसके मुँह तक आकर गिर पड़ा था, और मौक़ा पाते ही पुनः उसको खा जाने को प्रस्तुत था। दक्षिण विजय की लालसा उसके हृदय से उसके मृत्यु काल तक नहीं गई थी। शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति भी उसकी आँखों के सामने थी। वह यह भी जानता था, कि बीजापुर मुझ से सन्धि करके शिवाजी का दमन करना चाहता है, और इस प्रकार से दक्षिण में अपनी शक्ति बढ़ा कर शक्तिशाली हुआ चाहता है। इधर वह उत्तरीय भारत में अपनी दशा भी देखता था। वह जानता था कि भारत में मेरी शक्ति अभी पूर्ण रूप से प्रसरित नहीं हुई है। भाइयों के पक्ष-पातियों के हृदय की क्रोधाग्नि अभी शान्त नहीं हुई है। इस समय यही उचित है, कि दक्षिणी शत्रुओं से सन्धि कर उत्तर में अपनी शक्ति बढ़ाऊँ। उधर दक्षिण में मेरी इस नवीन सन्धि से दोनों की शक्ति बढ़ने से रुक जायगी, और मैं समय पाकर दोनों का नाश कर दूंगा। *

ऐसा विचार कर औरंगज़ेब ने शिवाजी के प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिये, किन्तु पैतृक सम्पत्ति के विषय में कहा, कि मैं इस पर फिर विचार कर अपना मत प्रकट करूँगा। सन्धि निश्चित हो जाने के पश्चात् औरंगज़ेब ने शिवाजी को अपने दरबार में पंजहज़ारी मनसब प्रदान किया। दूत ने दिल्ली से

---

* औरंगज़ेब ने अपने चातुर्य्य का परिचय तो दिया, किन्तु जो वह सोचता था वह न हुआ, जैसा कि आगे ज्ञात हो जायगा।

लौट कर शिवाजी को सब हाल सुनाया जिसको सुन कर शिवाजी बहुत प्रसन्न हुए ⊛। उपर्युक्त सन्धि के अनुसार शिवाजी ने कोङ्कण प्रदेश पर अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। औरंगज़ेब से युद्ध करने के कारण बीजापुर की शक्ति शिथिल होगई थी। देश के प्रायः समस्त दुर्ग जीर्ण हो रहे थे। धनाभाव के कारण अली आदिलशाह ने बहुत सी सेना अपने यहाँ से पृथक् कर दी थी। उस सेना के बहुत बड़े भाग को शिवाजी ने अपने यहाँ ले लिया था। इस नवीन सेना के अधिपति रघुबल्लाल निर्वाचित किये गये। गोमाजी नायक ने शिवाजी से कहा था, कि इस यवन, सेना को लेकर आप ग़लती कर रहे हैं, परन्तु शिवाजी ने "कण्टकेनैव कण्टकम्" × कह कर उनको समझा दिया। इस दूरदर्शिता ने शिवाजी को भविष्यत् में आशातीत लाभ कराया।

अली आदिलशाह अशिक्षित होने के सिवा उद्धत स्वभाव के भी थे। इन दोनों कारणों से राज्य कार्य सम्पादन भली भांति नहीं होता था। प्रजा शाह के दुराचरणों के कारण अप्रसन्न रहती थी। घरेलू झगड़ों के कारण बीजापुर दरबार दो भागों में विभक्त हो रहा था। एक भाग तो शाह को राजच्युत

---

⊛ इस सन्धि में शिवाजी और औरङ्गज़ेब ने अपनी-अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता दिखलाने का यत्न किया था। दोनों ही बीजापुर की घात में बैठे हुये थे।

× अर्थात् यवनों ही के द्वारा यवनों का संहार करना।

करने का उद्योग करता था, और दूसरा उनकी रक्षा के यत्न में लगा था। राज्य के प्रधान मन्त्री ख़ाँ मुहम्मद विद्रोहियों के नेता बन बैठे, परन्तु अभी शाह की शक्ति अधिक थी। एक दिन शाह ने आश्वासन-वाक्य देकर मन्त्री को दरबार में बुलाया। काल-प्रेरित मन्त्री दरबार में गया। शाह ने उसको बन्दी कर हाथी के पैरों से कुचलवा डाला। उसके पुत्र ख़वासख़ाँ ने पिता का बदला चुकाने का यत्न प्रारम्भ किया। इन षड्यन्त्रों से शिवाजी को अधिक लाभ हुआ। पारस्परिक विद्रोहों के कारण बीजापुर राज्य की दशा अव्यवस्थित थी। ऐसे समय को पाकर शिवाजी ने कोङ्कणस्थ दुर्गों पर अधिकार कर लिया। दुर्गों पर अधिकार करते समय शिवाजी की फ़तहख़ाँ सीदी से मुठभेड़ होगई। सीदी एक पराक्रमशील मनुष्य था। बीजापुर की ओर से कोङ्कण प्रदेश में उसने एक जागीर पाई थी। अपनी जागीर में उसने एक अच्छी ख़ासी सेना तैयार करली थी। उसी के घमण्ड पर वह शिवाजी को तृणवत् समझता चला आता था। वह गर्व में आकर कभी-कभी कह बैठता था, कि यदि शिवाजी मेरे सम्मुख आवे तो मैं उनको मज़ा चखा दूं। अन्त में उसकी इच्छा पूरी हुई।

श्यामराजे पन्त के सेनापतित्व में महाराष्ट्र-सेना सीदी पर चढ़ आई। सेना के आगमन का वृत्तान्त उसे पूर्व से ज्ञात होगया था, अतएव वह सब प्रकार से युद्ध के लिये उद्यत था। श्यामराजे पन्त ससैन्य सीदी की जागीर के मध्य में पहुँच गये।

वहाँ पहुँचते ही फ़तहख़ाँ ने मरहटाओं के पृष्ठ भाग पर घोर आक्रमण किया। अचानक पीछे के आक्रमण ने पन्त के होश-ओ-हवास बिगाड़ दिये। सैन्य होते हुए भी कुछ काल तक उनसे कुछ करते धरते न बन पड़ा। अन्त में उनकी सेना पीछे हटने लगी। अब सीदी के आक्रमण और भी भीषण होने लगे। सीदी के निरन्तर आक्रमणों को सहन करते हुए मरहटे वीर एक दम किटकिटा उठे, परन्तु सेनापति की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करना महाराष्ट्र सैनिकों ने सीखा ही न था। अस्तु, पेशवा की सेना अरि-सैन्य को मारती काटती पीछे हट आई *। जिस समय शिवाजी ने यह वृत्तान्त सुना उनको बड़ा खेद हुआ। खेद का कारण यह था, कि यह घटना प्रथम ही हुई जिसमें शिवाजी की सेना को पीछे पैर रखना पड़ा था। पहले तो उन्होंने सोचा कि कदाचित् हमारी सेना निर्बल थी, परन्तु जब उनको ज्ञात हुआ कि पेशवा की कुबुद्धि का यह फल था, तो ऐसे मनुष्य को सेना और राज्य का भार देना उन्होंने उचित नहीं समझा। श्यामराजे को पदच्युत कर मोरो त्रिमुल को उस पद पर नियुक्त किया। इसके पश्चात् शिवाजी ने रघुनाथ पन्त के आधिपत्य में सीदी के दमन करने के लिये सेना भेजी। सीदी पेशवा की दुर्बुद्धि के कारण विजय प्राप्त कर मदोन्मत्त हो रहा था, परन्तु

---

* इस युद्ध में पेशवा ने यह भूल की थी, कि वह एक दम सीदी के घर में घुस गया। सीदी वहाँ सब बात से युद्ध के लिये सुसज्जित था, अतएव दुश्मन को घर में पाकर उसको विजय सहज ही में मिल गई।

उसको ज्ञात नहीं था, कि इस बार उसे एक रणपुंगव का सामना करना पड़ेगा। सीदी जिस समय आकाश पाताल के कुलावे मिला रहा था, उसी समय घोर भीमनाद करते हुए मरहटाओं ने उसको धर दबाया। पूर्व वैर प्रतिशोध के कारण उनका रक्त उबल उठा। दोनों ओर से आक्रमण होने लगे। रघुनाथ पन्त बारबार घोर आक्रमण करने लगे। सीदी भी उनको सहन करता हुआ अपना बल दिखलाने लगा। इसी समय में घनघोर घटाओं ने आकर दोनों की कामनाओं को दबा दिया, परन्तु इस जल-पात ने पन्त के हृदय में शान्ति के स्थान पर घोर अशान्ति उत्पन्न कर दी। भीम विक्रम दिखलाने की प्रबल इच्छा मन की मन ही में रह गई और सीदी कुछ काल के लिये बच गया।

---

## दसवाँ परिच्छेद

# अफ़ज़लखाँ

सीदी के पराजित करने की एकमात्र इच्छा रघुनाथ पन्त के हृदय में ही रह गई। रघुनाथ पन्त वहाँ से आकर दूसरे काम में लगे। अब बीजापुर ने शिवाजी पर आक्रमण किया। सन् १६५८–५६ ई० में अफ़ज़लखाँ बीजापुर की सहस्रशः सेना लेकर शिवाजी पर चढ़ आये।

बीजापुर नरेश ने जब देखा कि शिवाजी बीजापुर को कमज़ोर करके अपना बल बढ़ा रहे हैं, तो उसने शिवाजी का दमन करना उचित समझा। यह विचार कर सुलतान ने एक दिन सभा में शिवाजी के सब कामों की आलोचना की। अन्त में यह कहा कि यदि शिवाजी अधःपतित न किये जायँगे, तो बीजापुर राज्य की इतिश्री समझना चाहिये। अभी तक हमारा यह ध्यान था कि यह सब शाहजी की दुष्टता का फल है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। शिवाजी अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर घोर विद्रोहाचरण कर रहे हैं। शिवाजी के नाश हेतु बाजी श्यामराजे को भी भेजा, परन्तु वह शिवाजी की चालाकियों के सामने ठहर न सका, और अन्त में विफल मनोरथ होकर लौट आया। चन्द्रराव मोरे को भी भड़काया, परन्तु वहाँ सिद्धि तो दूर रही स्वयं

बेचारे की जान गई। अब हमको ज्ञात होता है कि शिवाजी का बल रात-दिन बढ़ता जाता है। उसके बल को ध्वस्त करने के लिये जब तक एक बड़ी सेना न भेजी जायगी तब तक शिवाजी का बल नहीं टूट सकता।

शाह की उक्त बातों को सुनकर उमरावों को कुछ जोश आगया। अफ़ज़लख़ाँ नामक एक सरदार उठ ही खड़ा हुआ, और कहने लगा, क्या हम लोग कापुरुष हैं जो एक निकम्मे लुटेरे को नरक का दर्शन नहीं करा सकते हैं? नहीं-नहीं हम लोगों की नस नस में वीर-रक्त बह रहा है। तैमूर और चङ्गेज़ख़ाँ का खून अभी हम लोगों में मौजूद है। शिवाजी की क्या ताक़त है कि वह बीजापुर का सामना कर सके। मैं आप लोगों के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं शिवाजी का जीवित अथवा मृतक शरीर लाकर हुज़ूर के सिंहासन के तले न डाल दूं तो मेरा नाम अफ़ज़लख़ाँ नहीं। अफ़ज़लख़ाँ की ऐसी ओजस्विनी प्रतिज्ञा को सुन कर सुलतान एक बार मुग्ध होगये।

अफ़ज़लख़ाँ बीजापुर दरबार में एक पराक्रमी मनुष्य था। रणचतुर होने के सिवा वह वाक्पटु भी था। शरीर का विशाल संगठन, आबनूस का रंग, क्रूर मुख, मोटे-मोटे होठ और चपटी नाक साफ़ ज़ाहिर करतीं थी कि अफ़ज़लख़ाँ हबशी है, और उसकी मातृभूमि अफ्रीका है। यद्यपि वह जीवन के अन्तिम भाग में पदार्पण कर चुका था, तथापि उसके शारीरिक बल ने उसका साथ नहीं छोड़ा था। इस अवस्था में भी वह इतना बलवान

था कि अन्य मनुष्यों को तृणवत् समझता था। अपने बल और रणचातुर्य्य के भरोसे पर उसने शिवाजी के ध्वंस करने की प्रतिज्ञा की थी। सन् १६५६ के अगस्त मास के अन्तिम भाग में अफ़ज़लख़ाँ पाँच हज़ार अश्वारोही, सात हज़ार पैदल, कई हज़ार ऊंट, और अगणित तोपें लेकर शिवाजी के विनाश को चले। अफ़ज़लख़ाँ ने सोचा, कि बेचारा शिवाजी इतनी बड़ी सेना का सामना कदापि नहीं कर सकेगा। हमारी प्रबल सैन्य को देख कर शिवाजी का हृदय थर्राने लगेगा। निस्सन्देह अफ़ज़लख़ाँ का विचार ठीक था। शिवाजी इतनी विजयों के पाने पर भी बीजापुर के मुक़ाबले के योग्य न थे। इस समय विस्तृत बीजापुर राज्य का सूक्ष्म भाग ही शिवाजी के अधिकार में आया था, परन्तु जो भाग शिवाजी के पास आगया था उस में उनकी शक्ति पूर्ण रूप से प्रसरित हो गई थी। उन प्रदेशों के निवासी शिवाजी से हार्दिक सहानुभूति रखते थे। वे लोग शिवाजी के सम्भाषण और व्यवहार से पूर्णतया वशीभूत थे। वे शिवाजी से स्वतन्त्रता का मन्त्र पाकर यवनराज्य का अन्त देखने लगे थे। वे समझने लगे थे, कि अब परतन्त्रता की घटा उनके सिरों पर से हट गई। अब स्वतन्त्रता का सूर्य्य अपने दर्शन देकर हम को आनन्द देगा। स्वच्छन्दता के मूल्य को समझते हुए वे यथाशक्ति ऐक्य भाव को बढ़ाते थे। परन्तु तत्कालीन कुछ जागीरदार ऐसे भी थे, जो यवन-राज्य को अक्षय जानकर शिवाजी का सर्वनाश अति समीप समझते

थे, अतएव वे शिवाजी को सहायता न देकर बीजापुर का पक्ष ग्रहण करते थे।

अफ़ज़लख़ाँ की चढ़ाई ने महाराष्ट्र देश में हलचल मचादी, परन्तु जिस प्रकार समुद्र अपनी टक्करों से पर्व्वत को नहीं हिला सकता, उसी प्रकार अफ़ज़लख़ाँ की सेना शिवाजी के हृदय को डवाँडोल न कर सकी। इस बार शिवाजी को जागीरदारों से युद्ध करना नहीं था, और न जूनार का लूटना था, किन्तु जागीरदारों के अधिनायक से लड़ना था। मरहटे अफ़ज़लख़ाँ को छिन्न भिन्न करने के लिये सुसज्जित होने लगे। अपने अधीनस्थ दुर्गों को शिवाजी अन्न, अस्त्र और अन्य युद्धोपयोगी वस्तुओं से परिपूरित कर अफ़ज़लख़ाँ को रोकने के लिये प्रतापगढ़ में जा डटे।

बीजापुर से अफ़ज़लख़ाँ भी मदोन्मत्त गयन्दवत् शिवाजी पर चढ़ चले। सितम्बर मास में उन्होंने ससैन्य बीजापुर को छोड़ दिया, वे सीधे प्रतापगढ़ की ओर न जाकर पुरन्धर की ओर चलने लगे। अफ़ज़लख़ाँ पूर्व में यहाँ के सूबेदार रह चुके थे। वे वर्षा ऋतु में ऐसे स्थानों में सैन्यसंचालन की कठिनाइयों से पूर्णतया परिचित थे। मावलियों की वीरता का अनुभव किये हुये अफ़ज़लख़ाँ ने ऐसी ऋतु में शिवाजी पर हठात् आक्रमण करना उचित न समझा, अतएव वे वर्षान्तर की प्रतीक्षा करते हुए पुरन्धर की ओर बढ़ते जाते थे। अफ़ज़लख़ाँ ने जिस समय बीजापुर छोड़ा, उसी समय से अपनी क्रूर प्रकृति

का परिचय देना आरम्भ किया। अपनी हिन्दू प्रजा के मन्दिरों को समतल करते हुए, मूर्त्तियों को तोड़ते हुए, हिन्दू ग्रामों में अग्नि-संस्कार करते हुए यवन सेनापति तुलजापुर तक पहुँचे। यहाँ भी अच्छे-अच्छे मन्दिर थे। मन्दिरों को देखते ही अफ़ज़लख़ाँ ने महमूद ग़ज़नी का स्वरूप धारण किया। देखते ही देखते सब मन्दिर भूतलशायी हो गये। मूर्त्तियों का जितना निरादर हो सकता था, किया गया। हिन्दू-ग्रामों को लूटते और फूँकते हुए ख़ाँसाहब पंढरपुर आ पहुँचे। यहाँ भी राक्षसी लीला को देखने के इच्छुक यवन सेनानी ने हिन्दुओं पर अत्याचार किये जाने की आज्ञा दी। अत्याचार ने रौद्र रूप धारण कर ग्रामों को श्मशानवत् बना दिया। हिन्दू प्रजा त्राहि-त्राहि करती हुई इधर-उधर भागने लगी। यवनों ने अपने पैशाचिक कर्म पर मन्द-मन्द हास्य करते हुए, सेनापति से अपनी समस्त शूरता का आद्योपान्त वर्णन किया। सेना के वीभत्स कर्म श्रवण कर अफ़ज़लख़ाँ बड़े प्रसन्न हुए। कदाचित् अफ़ज़लख़ाँ यह विचार कर, कि काफ़िर हिन्दुओं के लिए यह उचित दण्ड है, प्रसन्न हुए हों। अफ़ज़लख़ाँ के उक्त कर्मों से यह साफ़ मालूम होता है, कि उसका द्वेष केवल शिवाजी ही से न था, किन्तु हिन्दू धर्म से भी था। राजकर्मचारी का अपने राज्य की प्रजा पर ऐसा अत्याचार क्या युक्ति संगत हो सकता है? धार्मिक विद्वेष को लेकर अफ़ज़लख़ाँ बीजापुर से चले थे। 'एक पन्थ दो काज' उनका ध्येय था। उक्त घटनाओं से यह प्रतीत होता है, कि

शिवाजी के नाश के साथ ही वह हिन्दू धर्म के नाश करने का यत्न भी कर रहा था।

शिवाजी ने जब यह वृत्तान्त सुना, तो वे बड़े उत्तेजित हुए। यवनों के अत्याचार ने उनके क्रोध को द्विगुणित कर दिया। क्रोधावेश में मुख से निकले हुए शिवाजी के वीर शब्दों ने मावलियों के हृदयों को अत्यन्त उत्तेजित कर दिया। वे सब प्रकार से अफ़ज़लखाँ का मुख-मर्दन करने के लिये उद्यत हो गये। सुहृद् मित्रों से परामर्श कर शिवाजी अपनी इष्टदेवी भवानी के मन्दिर में गये। जाते समय चिटणीस से कह दिया कि, उस समय जो शब्द मेरे मुख से निकलें उन सबको तुम लिख लेना। ध्यानमग्न शिवाजी के मुख से निकले हुए शब्द अति ही उत्तेजक थे। प्रार्थना समाप्त कर शिवाजी अपनी माता जीजीबाई के पास गये। वहाँ उन्होंने उनसे समस्त व्यवस्था वर्णन की और रण-क्षेत्र में जाने के लिये आशीर्वाद मांगा। वात्सल्य प्रेम-पूरित माता जीजीबाई ने आशीर्वाद देकर शिवाजी को विदा किया।

बीजापुर की सेना बढ़ती चली आ रही थी। अफ़ज़लखाँ सोचते चले आते थे, कि पहुँचते ही शिवाजी को पराजित कर बन्दी कर लूँगा, परन्तु जब शिवाजी के कार्य्यों की ओर ध्यान जाता था, तब उसके हृदय में चंचलता होती थी। वह सोचता था, कि कहीं मेरा ही मुँह काला न हो जाय। फिर मैं दरबार में कैसे मुँह दिखाऊँगा? कभी यह भी विचारता था, कि यदि समर में शिवाजी पर विजय मिल भी गई, तो शिवाजी

का हाथ आना क्या सरल काम है ? अतएव मुझे इस समय बुद्धिमानी से काम करना चाहिये। सोच समझकर अफ़ज़लखाँ ने गोपीनाथ पन्त को अपना दूत बनाकर शिवाजी के पास भेजा*। यह ब्राह्मणकुमार अपने समय का एक विद्वान् पुरुष था। बीजापुर के दरबार में इनका मान भी था। शिवाजी पर चढ़ाई करते समय अफ़ज़लखाँ ने इनको अपने साथ ले लिया था। उसने इन से विभीषण का काम लेना विचारा था।

पन्तजी दूत बनकर शिवाजी के पास जा पहुँचे और उन्होंने अफ़ज़लखाँ के प्रेषित सन्देश को कह सुनाया। उन्होंने शिवाजी से कहा, कि बीजापुर-सरदार आपसे युद्ध करना नहीं चाहते हैं। वे आपके पिता शाहजी के परम मित्र हैं, अतएव वे चाहते हैं कि आप भी उनसे वैर-भाव छोड़कर प्रेम-भाव स्थापित करें। पिता के मित्र के साथ ऐसा करना सर्वथा प्रशंसनीय होगा और बीजापुर से आपका पूर्ववत् प्रेम-सूत्र बँध जायगा। अफ़ज़लखाँ चाहते हैं कि कोंकण प्रदेश के आपही जागीरदार

* किसी-किसी ने ऐसा भी लिखा है, कि पन्त जी के आने के पूर्व ही शिवाजी ने अफ़ज़लखाँ के पास कहला भेजा था—'मेरी क्या ताब है कि आप ऐसे वीर पुरुष से युद्ध करने का साहस करूं। इसलिये आप से मेरी यही प्रार्थना है, कि आप मेरे किये कार्यों को भूल जावें तो आजतक मैंने आपके जितने क़िलों पर दख़ल किया है वे सब छोड़ दूँ,' परन्तु जो बातें पन्तजी ने शिवाजी से की थीं, उनसे इस बात का पता नहीं चलता है।

रहें। पन्तजी के इस प्रस्ताव को शिवाजी ने बहुत ही पसन्द किया। शिवाजी ने सोचा, कि यदि इसी तरह से यह झगड़ा शान्त हो जाय तो अच्छा है। शिवाजी का यह ख्याल था, कि यदि दैववशात् इस युद्ध में मुझे विजय-लक्ष्मी प्राप्त भी होगई तो क्या! बीजापुर अन्त को प्रभुत्वशाली राज्य है। उसके सम्मुख हमारा टिकना असम्भव है। सन्धि होजाने पर मुझे कोंकण मिल ही जायगा, उसीमें मैं अपनी वृद्धि करूँगा, और फिर मैं बीजापुर का सामना कर सकूंगा। यह सब सोच विचार कर शिवाजी ने सन्धि-प्रस्ताव के स्वीकार करने में अपनी अनुमति दे दी।

जब शिवाजी ने सन्धि-प्रस्ताव स्वीकार करलिया, तब पन्तजी ने उनसे कहा, कि अब आप को उचित है किआप एक वार अपने पिता के मित्र के साथ साक्षात्कार करें। आप दोनों के मिलने से एक प्रबल-प्रेम-पाश तैयार हो जायगा। अब तो शिवाजी को सन्देह हुआ। प्राचीन सम्राट् अलाउद्दीन* के कर्म उनकी आखों के सामने घूमने लगे। मिलने का तात्पर्य क्या! सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए नहीं कि दोनों जने मिल लें,

*अलाउद्दीन ने जब मेवाड़ पर चढ़ाई की थी, तो वहाँ राणा भीमसिंह को अपने शिविर में बुलवाकर पहले तो अपने अपराध की क्षमा माँगी, और फिर बात करते-करते वह उनको अपनी सेना के मध्य में ले आया। और यहां पर यवन सैनिकों ने अलाउद्दीन के संकेत से राणा को बन्दी कर लिया।

इसका प्रयोजन क्या ! अवश्यमेव इसमें कुछ भेद है। उनके हृदय में सन्देह उठने लगे। उनको ख़्याल आया कि कर्नाटक के युद्ध में इसी अफ़ज़लख़ाँ के षड्यंत्र से मेरे भाई का जीवनान्त हुआ था। ऐसे ही बदमाश चालबाज़ों के कारण मेरे पिता को काल-कोठरी में प्राणान्त-पीड़ा सहन करनी पड़ी थी। इन यवनों ने एक बार ही नहीं, सहस्रों बार सरल स्वभाव हिन्दुओं को अपने कपट-पाश में फाँसा है। क्या ये विश्वसनीय हो सकते हैं ? इन्हीं विचारों के कारण उस रोज़ की सभा विसर्जित हुई।

सभा-भंग होते समय शिवाजी ने पन्तजी से कहा, कि अभी आप ठहरिए। उन्होंने उनकी बात मान ली। शिवाजी उनके लिए उचित प्रबन्ध कर अपने अन्तःपुर में चले गये। जब कुछ रात्रि व्यतीत हो गई, तो शिवाजी चुपचाप पन्तजी के पास पहुँचे। इस समय शिवाजी ने उनसे जो बातचीत की है, वह अतीव हृदयग्राहिणी है। शिवाजी ने कहा "यद्यपि आप बीजापुर के कर्मचारी हैं, परन्तु आप अति उच्च ब्राह्मण-कुलोद्भव हैं। हम क्षत्रियगण ब्राह्मणों के दास हैं। आप ब्राह्मण हैं। मुझे विश्वास है आप हमारी हानि नहीं सह सकते फिर आप देखते ही हैं, कि इन मुसलमानों द्वारा हिन्दुस्तान का सर्व-नाश हो रहा है। सनातन हिन्दू धर्म की इनके द्वारा अत्यन्त दुर्गति हो रही है, देव-द्विजों की निर्मल मर्य्यादा नष्ट हो रही है। मैंने मातृ-भूमि के उद्धार का बीड़ा उठाया है। इनके षड्यन्त्र से मेरा अनिष्ट होना आपको कदापि इष्ट नहीं हो सकता।

आप धर्म की रक्षा के लिए क्षत्रियों की रक्षा का प्रबन्ध कीजिए। आपने अफ़ज़लखाँ से मेरा मिलना आवश्यक समझा है, परन्तु ऐसा प्रबन्ध कीजिये कि मिलने के समय अफ़ज़लखाँ मुझे जाल में न फँसा सके। यद्यपि मैं लड़ने को सदा प्रस्तुत हूँ, परन्तु अफ़ज़लखाँ के मिलने की इच्छा पूरी न करने का कायर-पन भी मुझे असह्य है। आप ऐसे स्थान पर भेट कराइये, कि यदि धोखेबाज़ी से मुझे क़ाबू में कर लेना उसको अभीष्ट हो, तो वह अपनी इच्छा पूरी न कर सके।" पन्तजी ने जब शिवाजी की इस ओजस्विनी वाणी को सुना, तो उनका हृदय चलायमान हो गया। उनका हृदय एक बार ही बीजापुर दरबार ही से नहीं, किन्तु मुसलमानों की ओर से भी फिर गया। उन्होंने शिवाजी से अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट कर उनको सहायता देने का वचन दिया। पन्तजी को अपनाकर शिवाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनको ऐसा भासित होने लगा कि उन्होंने इसी समय अर्द्ध विजय प्राप्त करली। पन्तजी के लौट जाने के उपरान्त शिवाजी ने कृष्णजी भास्कर को अपना दूत बना कर अफ़ज़लखाँ के पास भेजा। उन्होंने वहाँ पहुँच कर अफ़ज़लखाँ से बात-चीत की। सन्धि-सम्बन्धी बात चीत हो जाने के पश्चात् मिलने की बात ठहरी। मिलने का स्थान प्रतापगढ़ के नीचे निर्दिष्ट हुआ।

मिलने की बात पक्की हो जाने के पश्चात् शिवाजी ने अफ़ज़लखाँ की सेना का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया।

शिवाजी ने देखा कि उसके पास इस समय इतनी सेना है, कि समर-क्षेत्र में मेरा विजय पाना कठिन है। परन्तु उन्होंने यह भी देखा कि अफ़ज़लख़ाँ की सेना बाई से महाबलेश्वर तक फैली हुई है, अतएव उसके उभय पार्श्व भाग आक्रमण के लिये अरक्षित हैं। शिवाजी की सेना कृष्णा के निकटस्थ जङ्गलों में इस प्रकार से फैली हुई छिपी थी, कि अरि-सेनानी की दृष्टि उस पर नहीं पड़ सकती थी। अफ़ज़लख़ाँ तो इस विचार में थे, कि मैंने सर्वतः शिवाजी की सेना को अवरुद्ध कर लिया है, परन्तु शिवाजी अपने को सुरक्षित समझते थे।

उभयपक्ष के नेता इस बात के उद्योग में संलग्न थे, कि यदि किसी प्रकार से एक बन्दी हो जाय, तो विजयलक्ष्मी बन्दी करने वाले का गाढ़ आलिङ्गन करेगी। दोनों ही इस बात से पूर्ण रूप से परिचित थे, कि पूर्वी युद्धों में सेनापति के पतन होने पर बहुधा उसके दल की पराजय होती है। शिवाजी ने मोरोपन्त और नेताजी पालकर को बुलाया और उन्हें समस्त व्यौरा कह सुनाया। उन्होंने विशेष रूप से सचेत रहने की सलाह दी। इसके पश्चात् शिवाजी ने अपनी सेना को मुसलमानी सेना के आस पास छिपा दिया, और उसे सर्वदा सचेत रहने का आदेश दिया। कुछ थोड़ी-सी और सेना लेकर मोरोपन्त अपनी अवशिष्ट सेना से आगे बढ़ गये और अफ़ज़लख़ाँ की सेना के निकट आ गये। एक बार पुनः माता से आशीर्वाद लेकर शिवाजी चले। चलते समय

माता ने कहा "शिवा! देखो! ये मुसलमान बड़े ही विश्वासघाती हैं, इनसे सदा ही सचेत रहो। तुम अफ़ज़लख़ाँ से मिलने जाते हो। मैंने सुना है कि वह एक भीमकाय योद्धा है, और तुम उसके सामने बहुत ही नाटे हो, अतएव इस बात का ध्यान रखना कि कहीं ऐसा न हो, कि वह तुमको दबा ले।" शिवाजी ने कहा "माता! मैं सब प्रकार से सावधान हूँ, आप कुछ चिन्ता न करें, भवानी की कृपा से सब मंगल होगा।" शिवाजी वहाँ से चल पड़े, और आकर उन्होंने ज़िरह बख़्तर पहन कर ऊपर से सादा वस्त्र धारण किया। फिर बघनखा❀ को छिपा कर वे अफ़ज़लख़ाँ से मिलने को चले।

चलते समय शिवाजी ने शम्भाजी कावजी और जिउमहला को अपने साथ ले लिया था❁। अफ़ज़लख़ाँ ने शिवाजी को दूर से आते देख अपने पास खड़े हुए एक योद्धा से पूछा, 'इनमें शिवाजी कौनसा है ?' उसने उत्तर में कहा, 'देखिये वह जो नाटे क़द और साँवले रंग का व्यक्ति तलवार लगाये चला आता है, वही शिवाजी है'। ऐसे नाटे मनुष्य को देख कर अफ़ज़लख़ाँ

---

❀ यह एक प्रकार का शस्त्र है जो व्याघ्र के पंजे के सदृश होता है। यह दस्ताने में लगा रहता है। जिस प्रकार व्याघ्र अपनी इच्छा से पंजे के नखों को बाहर निकाल लेता है और फिर भीतर कर लेता है उसी प्रकार यह भी काम में लाया जा सकता है।

❁ सन्धि प्रस्ताव में यह भी तय हुआ था, कि सम्मेलन-समय उभय-पक्ष वाले दो-दो योद्धा अपने-अपने साथ ला सकते हैं।

मन ही मन प्रसन्न हुए। शिवाजी अकेले अफ़ज़लखाँ के तम्बू में गये। उन्हें आया देख अफ़ज़लखाँ उनसे मिलने को आगे बढ़ा। थोड़ी देर बाद बाहर लोगों को 'दौड़ो, दौड़ो, मरे, मरे' इत्यादि शब्द सुनाई दिये। उभयपक्ष के चारों योद्धा भीतर गये। उन्होंने जो दृश्य देखा वह अति भयानक था। अफ़ज़लखाँ का शव पृथ्वी पर पड़ा हुआ छटपटा रहा था। उसकी अन्तड़ियाँ पेट से बाहर निकली पड़ी थीं। इस दृश्य को देखकर सैयद बण्ड और गोविन्दपन्त* का रक्त उबल उठा। उधर शिवाजी के साथी भी वहाँ उपस्थित थे। सैयद ने शिवाजी पर आक्रमण किया, परन्तु थोड़ी ही देर में उसका मस्तक धड़ से अलग होकर भूमि पर लोटने लगा। गोविन्दपन्त ने असि निकाल कर आक्रमण किया, परन्तु शिवाजी ने कहा 'तुम ब्राह्मण हो, अतएव अवध्य हो। यदि तुम्हें अपने प्राण प्यारे हों, तो यहाँ से हट जाओ' इतने में जिउमहला ने उसका खड्ग छीन लिया और उसको निरस्त्र कर दिया। पंडितजी को छोड़ दिया गया, और अफ़ज़लखाँ का शिर काट लिया गया।

इतिहास में यह घटना विवादपूर्ण है। ग्रांट डफ़, स्मिथ और लेनपूल इत्यादिक इतिहासवेत्ताओं ने शिवाजी को इस घटना के कारण 'दग़ाबाज़' ठहराया है। उन्होंने शिवाजी के इस कार्य को दग़ाबाज़ी बतलाया है। यवन इतिहासकारों ने तो शिवाजी को बहुत कुछ खरी खोटी सुना डाली हैं, परन्तु सभासद् और

---

* ये दोनों योद्धा अफ़ज़लख़ाँ की ओर के थे।

चिटणीस ने अफ़ज़लखाँ को दोषी ठहराया है। इतिहास के लिए यह विषय विचारणीय है। यूरोपियन और मुसलमानों ने तो इस घटना का यों वर्णन किया है, 'शिवाजी अफ़ज़लखाँ से मिलने गये। अफ़ज़लखाँ उनसे मिले, छाती से लगाते समय शिवाजी ने बघनखा को, जिसको वे अपने साथ गुप्त रूप से लाये थे ख़ान के उदर में भोंक दिया। ख़ान की अन्तड़ियाँ निकल पड़ीं और वे छटपटा कर भूमि पर गिर पड़े। पश्चात् उनका सिर काट लिया गया।' महाराष्ट्र इतिहासकार यह लिखते हैं, कि ख़ान शिवाजी से शारीरिक बल में कुछ न्यून न थे। छाती से लगाते समय उन्होंने शिवाजी की गर्दन पकड़ ली, और उनको अपनी ओर खींचा। जब शिवाजी ने देखा कि ख़ान की और ही निगाह है, तब उन्होंने सांघातिक बघनखा से काम लिया। कोई कोई तो यहाँ तक कहते हैं, कि जब ख़ान ने उनके ऊपर तलवार का वार किया, तब शिवाजी ने बघनखा से उसका पेट फाड़ डाला। इस प्रकार से इस विषय पर दो भिन्न ऐतिहासिक मत हैं। एक तो शिवाजी को दोषी ठहराता है और दूसरा अफ़ज़लखाँ को।

अफ़ज़लखाँ मारे गये और शिवाजी ने उनको मारा इसमें तो किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है। अब रह गई प्रथम आक्रमण की बात, सो घटनाओं पर निर्भर है। तत्कालीन घटनाओं पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है, कि यह 'दग़ाबाज़ी' असामान्य नहीं थी। उस समय इससे भी घोरतम, "दग़ाबाज़ियाँ" कदाचित् पाप-कर्म नहीं समझी जाती थीं। औरङ्गज़ेब जो मुसल-

मानों में एक धार्मिक मुसलमान बादशाह गिना जाता है, जिसने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानकर 'फ़क़ीरी' ले ली थी, जो क़ुरान आदि को लिख कर अपना समय व्यतीत करता था, उसी औरङ्गज़ेब ने अपने सहोदर भाई मुरादबख़्श के साथ कैसा पाशाविक बर्त्ताव किया था। अलाउद्दीन ने 'दग़ाबाज़ी' ही से अपने चचा का बध किया था। अकबर ने दग़ाबाज़ी' से ही वीर जयमल को गोली का निशाना बनाया था। मुहम्मदग़ोरी ने 'दग़ाबाज़ी' ही से थानेश्वर में विजय पाई थी। इतने पर भी मुसलमान इतिहासकार शिवाजी को 'दग़ाबाज़' और उनके इस कार्य को 'दग़ाबाज़ी' कहें तो बड़ा आश्चर्य्य है।

अब थोड़ी देर के लिए हम यह मानलें, कि शिवाजी ने ही पहले अस्त्राघात किया, तो उन्होंने क्या पाप किया ? क्या उनको यह नहीं मालूम था, कि इन्हीं अफ़ज़लख़ाँ ने उनके सहोदर भ्राता शम्भाजी का बध कराया था ? कौन ऐसा मनुष्य है, जो अपने भाई के मारने वाले को देखकर क्रोधानल से न जलने लगे ? क्या उनको यह विस्मृत होगया था, कि इन्हीं ख़ान साहिब ने तुलजापुर और पन्धरपुर के देवालयों को नष्ट किया था ? क्या उनको यह याद नहीं आता था, कि इसी हबशी ने हमारी देव-मूर्तियों पर गज़नवी बर्ताव किया था ? क्या वे नहीं जानते थे, कि ऐसे ही सरदारों के कारण हमारे पूजनीय पिता 'ज़िन्दा दरग़ोर' कर दिये जाने वाले थे। इतिहासज्ञ इन सब बातों को न विचारते हुए एकदम शिवाजी को दोषी बतलाने लगे।

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उस घटनास्थल पर केवल दो ही आदमी थे, शिवाजी और अफ़ज़लख़ाँ। जब अफ़ज़लख़ाँ मारे गये, तो शिवाजी दोषी ठहरा दिये गये। अब थोड़ी देर के लिये यह मान लिया जाय, कि शिवाजी ही मारे गये होते, तब इतिहास में क्या लिखा जाता ? कदाचित् तब भी इतिहास शिवाजी ही को दोषी ठहराता, क्योंकि वह तो 'लुटेरे' थे, अतएव लुटेरे को मार डालना कुछ पाप नहीं है। अफ़ज़लख़ाँ न्याय के पक्ष पर थे, उनको कौन दोषी ठहरा सकता था ? अस्तु, समस्त घटनाओं पर विचार न कर विदेशियों ने शिवाजी को धींगा धींगी दोषी कह डाला। अब हमको तत्कालीन घटनाओं पर विचार करना है।

शिवाजी ने गत बारह वर्षों में जो कुछ मुसलमानों के पञ्जे से छुटा पाया था, उसका अधिकार में रखना उसी युद्ध पर निर्भर था। शिवाजी यदि हारते, तो वह क्या रह जाते ? नितान्त एक सामान्य मनुष्य ! नहीं-नहीं, कदाचित् उनको अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ता। अब एक ओर जीवन-रक्षा, मातृ-भूमि-रक्षा, सहोदर भ्राता का बध-प्रतिशोध, मन्दिर और मूर्त्तियों के भग्न होने का क्षोभ, और दूसरी ओर इतिहास की 'दग़ाबाज़ी' क्या बतला सकती है ? इसका विचार हम विदेशियों के ऊपर छोड़ते हैं। अब रह गये महाराष्ट्र इतिहास-लेखक, हम उनपर विश्वास कर सकते हैं, क्योंकि जिस समय अफ़ज़लख़ाँ बीजापुर से चले थे, उस समय उन्होंने जो प्रतिज्ञा

की थी, और रास्ते में जो-जो अत्याचार किये थे, उनसे यह नतीजा निकालना, कि खान ने शिवाजी पर पहले वार किया हो, कुछ अनहोनी घटना नहीं कही जा सकती है। अतएव किसी प्रकार से भी शिवाजी का यह कार्य अनुचित नहीं कहा जा सकता है। यदि खान ने पहले प्रहार किया और शिवाजी ने आत्म-रक्षा में उसको मारा, तो इसमें उनको कोई कदापि दोषी नहीं ठहरा सकता है। यदि शिवाजी ने ही उन पर प्रथम प्रहार किया, तो भी वे दोषी नहीं, क्योंकि उनके पास ऐसा करने के लिये बहुत से कारण थे, जो ऊपर दिखला दिये गये हैं।

अफ़ज़लखाँ के मरणोपरान्त शिवाजी ने अपनी छिपी हुई सेना बुलाई और घोर युद्ध होने लगा। प्रसिद्ध कवि भूषण ने कहा है:—

उतै पातशाह के गजन के ठट्ठ छूटे,
उमड़ि घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं।
इतै सिवराज जू के छूटे सिहराज औ,
विदारे कुम्भ करिन के चिक्करत भारे हैं॥

थोड़ी देर तक दोनों दलों में भयानक युद्ध हुआ, परन्तु सेनापतिहीन बीजापुर-सेना मावलियों के सामने न डट सकी। उसके पैर उखड़ गये। उस समय शिवाजी ने कहा 'भागती हुई सेना पर अस्त्र न चलाये जाँय, परन्तु यह खबर मोरोपन्तके पास देर में पहुँची। वे उस समय यवन-सेना में प्रलय कर रहे थे। उनसे आक्रान्त यवनसेना का कुछ ही अंश कटने से

बचा था। नेताजी के पास भी ख़बर देर में पहुँची, वे भी वहाँ सब सफ़ाई कर चुके थे, परन्तु जिन्होंने आत्मसमर्पण किया शिवाजी ने उनके साथ बहुत अच्छा बर्त्ताव किया, जिससे अनेक मुसलमान उनकी सेना में भर्ती होगये। सेना के भाग जाने के पश्चात् शिवाजी ने आदर पूर्वक अफ़ज़लख़ाँ के शव की अन्तिम क्रिया करा दी। विजय के पश्चात् शिवाजी ने अपने वीर सैनिकों को बहुत पुरस्कार दिया था। खन्दुजी काकरे ने ख़ान के ख़ानदान को बन्दी कर लिया था, परन्तु घूस लेकर उसने उसे छोड़ दिया था। शिवाजी को इस बात का पता लग गया, अतएव घूस लेने के कारण उसको दण्ड दिया गया।

शिवाजी को इस युद्ध में ६५ हाथी, ४०० अश्व, १२०० ऊंट, २०० गठरी वस्त्र, ७ लक्ष के मूल्य का सुवर्णादि और तोप आदि प्राप्त हुई थीं।

---

## ग्यारहवाँ परिच्छेद

# पितृ-वैर-प्रतिशोध

इस विजय से शिवाजी को बहुत कुछ लाभ हुआ। युद्ध के सामान के सिवा पन्हाल के दक्षिण का प्रदेश और कृष्णा की तटस्थ भूमि उनके अधिकार में आगई।

अब यवनाधिपतियों को मालूम होने लगा, कि इतने दिनों के पश्चात् पददलित निरुत्साहित हिन्दू जाति में स्वाभिमान उत्पन्न हुआ। पाठक फ़तहख़ाँ सीदी को भूले नहीं होंगे। एक वार महाराष्ट्र सेनापति की मूर्खता से विजय पाकर वह शिवाजी को तुच्छ समझने लगा था। वह समझता था, कि शिवाजी मेरे सामने कुछ नहीं है, जब चाहूँ तभी उनको मार कर भगा सकता हूँ; परन्तु जब उसने शिवाजी की इस विजय को देखा, तो वह भी एक वार हक्का बक्का होगया। फिर भी न मालूम क्या समझ कर उसने शिवाजी पर इसी समय आक्रमण करना उचित समझा। जब पहली वार शिवाजी की सेना का उससे युद्ध हुआ था, तो उसने ताला और गोशाला नामक शिवाजी के दो दुर्गों को लूट लिया था। इस समय उन्हीं दोनों दुर्गों को अपने अधिकार में लाने का विचार कर फ़तहख़ाँ ने उन पर आक्रमण किया। आक्रमण हुआ, परन्तु इस वार उसका भाग्य प्रबल न था।

शिवाजी की सेना ने उसके धुर्रे उड़ा दिये। विजयोन्मत्त महाराष्ट्री सैन्य उसके पीछे पड़ी, और अन्त में यहाँ तक उसका पीछा हुआ कि उसको उस प्रान्त से अपनी सेना हटा कर मुँह काला करना पड़ा।

फ़तहख़ाँ को भगाकर इस सेना ने पन्हाल पर चढ़ाई की। इसमें शिवाजी ने अपने कौशल का परिचय दिया था। शिवाजी ने अपने नायकों में बनावटी झगड़ा फैला दिया। एक सेना-नायक ८०० सिपाहियों का एक दल लेकर पन्हाल के दुर्गाध्यक्ष से जा मिला, और उससे कहा कि शिवाजी के अनुचित व्यवहार से क्षुभित होकर मैं आपके यहाँ नौकरी करना चाहता हूँ। सेना-नायक ने उस समय ऐसा भाव दिखलाया, कि दुर्गाध्यक्ष को उसका सर्वथा विश्वास होगया। उसने उसको अपने यहाँ नौकर रख लिया। थोड़े दिनों के पश्चात् शिवाजी ने उसपर यकायक आक्रमण किया। उनकी पहली सेना वहाँ मौजूद ही थी*। उसने गढ़ का द्वार खोल दिया। नवागत सेना दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हुई, और थोड़ी देर की मारकाट के पश्चात् दुर्ग शिवाजी के अधिकार में आगया।

अब शिवाजी का आतंक दूर-दूर तक फैल गया था। इधर उधर के वीरगण शिवाजी की सेना में सम्मिलित होने लगे। शिवाजी के सवार बीजापुर तक धावा मारने लगे। इन्हीं थोड़े से दिनों में पवनगढ़ और वसन्तगढ़ शिवाजी के अधिकार में आगये।

---

* इस सेना के सेनापति अन्नाजी थे।

राङ्गना और केलनेह* के विजय करने में शिवाजी को नाम-मात्र का युद्ध करना पड़ा था। शिवाजी की दृष्टि कोल्हापुर के दुर्ग पर पड़ी। सन् १६५६ के दिसम्बर मास में शिवाजी ने उस पर अधिकार कर लिया। बीजापुर ने रुस्तम जुमान को कोल्हापुर के पुनरधिकार के लिये प्रेषित किया, परन्तु महाराष्ट्री सेना ने उसे मार भगाया। रुस्तम को पराजित करने के पश्चात् शिवाजी बीजापुर की ओर बढ़े, परन्तु उसके पास पहुँच कर लौट पड़े।

उपर्युक्त समस्त स्थान अक्तूबर से दिसम्बर तक शिवाजी के अधिकार में आये थे।

बीजापुर के सुलतान को अब दिन-रात चैन नहीं था। शिवाजी की ओर से उन्हें बड़ा भय उत्पन्न हो गया था। 'बीजापुर वीरन के उर दाड़िम से दरक रहे थे'। बीजापुर में प्रतिदिन शिवाजी के दमन करने को मन्त्रणाएँ की जाने लगीं। विचार होने के पश्चात् यह ठहरा, कि शिवाजी पर एकदम कई ओर से आक्रमण किया जाय। इसकी पूर्ति के लिये कतिपय यवन सरदार चुने गये। इनमें से एक तो सीदी जौहर नाम का हब्शी था। वीरता के कारण उस समय उसका अच्छा नाम था। वह बीजापुर राज्यान्तर्गत 'करनूल' प्रदेशस्थ सेना का सेनापति था। जिस समय सीदी शिवाजी पर

---

* शिवाजी ने इस दुर्ग का नाम 'विशालगढ़' रक्खा था। इसी नाम से यह अभी तक प्रसिद्ध है।

चढ़ने को चला, तो उसने अपना नाम सीदी से सलावतखाँ रख लिया। अफ़ज़लखाँ का पुत्र फ़ज़लखाँ भी आक्रमणकारी हुआ। आक्रमण करने के पूर्व बीजापुर-सुल्तान ने शिवाजी के पास कहला भेजा, कि अब भी तुम मेरी अधीनता स्वीकार करलो। आगत दूत से शिवाजी ने गम्भीरता पूर्वक कहा—'दूत! जाओ और सुलतान से कह दो, कि उन्हें अब मेरे ऊपर आज्ञा करने का अधिकार नहीं है।' इस रूखे तथा अभिमान पूर्ण उत्तर को लेकर दूत बीजापुर पहुँचा। इस उत्तर को सुन कर सुलतान की क्रोधाग्नि भभक उठी।

दूत को विदा कर शिवाजी युद्ध की तैयारी करने लगे। आक्रमणकारियों की आक्रमण-परिपाटी से परिचित होकर उन्हों ने उचित प्रबन्ध कर डाला। फ़तहखाँ सीदी* का दर्पदलन करने के लिये रघुनाथ पन्त निर्वाचित किये गये। आबाजी स्वर्णदेव और कल्याण भीमरीकर दुर्गों और प्रदेशों की रक्षा के लिये नियुक्त किये गए। मोरो पन्त के सुपुर्द पुरन्धर, सिंहगढ़, और प्रतापगढ़ के दुर्ग किये गए। स्वयं शिवाजी पन्हालगढ़ में जा डटे। बाहरी तौर से उन्हों ने कुछ लड़ाई के लक्षण न दिखलाये। उनकी सारी सेना दुर्गों और बनों में छिपी हुई थी। आक्रमणकारी सेना को उस समय बड़ा सन्देह हुआ, जब उन्होंने लड़ाई के कोई चिह्न ही न देखे। उन्होंने इस बात का पता लगाना शुरू किया कि शिवाजी इस समय कहाँ हैं। शीघ्र ही इस बात का पता चल गया

* आक्रमण करने वाली सैन्य में यह भी सम्मिलित होगया था।

कि वे पन्हाल दुर्ग में हैं, अतएव यवन-सेना उसी ओर चल पड़ी। शिवाजी को उस दुर्ग की दृढ़ता का परम विश्वास था, परन्तु उनका विश्वास ठीक न निकला। दुर्ग अदृढ़ और भेद्य था, शिवाजी एकदम विपत्ति में फँस गये। आक्रमणकारी सेना ने दुर्ग को घेर कर उसका पतन करना विचारा। अल्प सेना से मैदान में युद्ध करना अनुचित समझ शिवाजी ने एक युक्ति विचारी। दुर्गस्थ सेना को उन्होंने दो भागों में विभाजित कर डाला। एक के नायक स्वयं बने और दूसरे के बाजीप्रभु बनाये गये।

बाजीप्रभु ने शिवाजी से कहा कि आप अपनी सेना को लेकर आगे बढ़िये मैं इस मुसलमानी सेना को रोकूंगा। इस उत्तर को सुन कर शिवाजी ने कहा—'बाजीप्रभु! मैं तुमको इस प्रकार से कटा देना नहीं चाहता हूँ, तुम यदि यहाँ मारे गये तो मेरी सेना को बड़ी हानि पहुँचेगी।' बाजी ने कहा—"आप इस विचार को छोड़िए, क्योंकि आज उद्देश्य रूपी यज्ञ में हमारे अनेक साथी बलिदान होंगे"। शिवाजी ने पुनः आपत्ति की और कहा कि हमारे रहते हुए तुम नहीं मर सकते हो। इतना कहकर उन्होंने उपस्थित सैनिकों की ओर देख कर कहा—"आओ हम लोग वीरत्व का परिचय दें। ऐसा समय वीरों को बारम्बार नहीं प्राप्त होता है।" बाजीप्रभु से न रहा गया। उन्होंने शिवाजी को बीच ही में टोक कर कहा—"प्रभो! मेरी आप चिन्ता न कीजिये, आपके पास अनेकानेक बाजीप्रभु हैं। मैं यहाँ

यदि मारा भी गया तो क्या चिन्ता, मुझसे अनेक बाजीप्रभु आपको मिल जायँगे, परन्तु शिवाजी फिर नहीं मिल सकते हैं। देखिये समस्त हिन्दू जाति आपके मुख की ओर निहार रही है। आपके शरीर को यदि कुछ हो गया, तो भारत अन्धकार के अन्धकार ही में रह जायगा, इस लिये अब आप ससैन्य यहाँ से जाइये।" शिवाजी ने कहा—"बाजीप्रभु! यह हमसे नहीं हो सकता है", बात काट फिर बाजीप्रभु ने कहा—"जाइये, आपको शिवाई की शपथ है, जाइये, महाराष्ट्र अनाथ न हो।" यों ही थोड़े विवाद के पश्चात् शिवाजी को उनकी बात माननी पड़ी। आँसू बहाते हुए शिवाजी वहाँ से चल पड़े।

निशा की निस्तब्धता भङ्ग हुई। यवन-सैन्य से 'शिकार भागा, पकड़ो, न छोड़ो' का शब्द सुनाई देने लगा। शिवाजी एक ओर से चुपके-चुपके चले जाते थे। बाजीप्रभु ने यवन-सैन्य को रोका। वीर मरहटे मुसलमानों की गति को रोकने लगे। स्वामिभक्त बाजीप्रभु भी अटल साहस से उनका सामना करने लगे। बाणों से उनका सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया, परन्तु वे अपने स्थान से तिल भर भी न हटे। शिवाजी रांगना के दुर्ग में पहुँच गये, और वहाँ पहुँच कर उन्होंने पाँच तोपों का शब्द किया *। बाजीप्रभु ने जिस समय इस शब्द को सुना उनकी इच्छा पूरी हो गई। शिवाजी सकुशल रांगना में पहुँच गये यह जान कर

* चलते समय बाजीप्रभु ने कह दिया था, कि जब आप रांगना पहुँच जावें तब क्षेम सूचक पाँच तोपों का शब्द करा दीजियेगा।

उनके मुख पर प्रसन्नता छागई, परन्तु घावों के कारण उनका रक्त बहुत निकल गया था, अतएव वे शिथिल होगये थे। थोड़ी देर में उनका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा, और एक स्वामि-भक्त-नर-रत्न की आत्मा स्वर्ग को सिधार गई। धन्य महाराष्ट्र वीर! ऐसी मृत्यु सर्वथा दुर्लभ होती है।

बाजीप्रभु के मरने पर यवन सेना पन्हाल दुर्ग में घुसी। वीर मावलियों ने पद-पद पर घोर युद्ध किया, परन्तु मुट्ठी भर सेना उसको कब तक रोक सकती थी। प्रायः समस्त वीर मावलियों ने वीर गति प्राप्त की, परन्तु यवनों की इच्छा पूर्ण न हुई। पिंजड़े में से शेर निकल गया। अब खाली उनको पिंजड़ा खटकाना था। यह घटना सन् १६६० में हुई थी।

सन् १६६१ में स्वयं बीजापुर के सुलतान शिवाजी पर चढ़ आये। शिवाजी ने देखा कि अब बड़ा कठिन समय है, सरदारों के सरदार से उनकी मुठभेड़ थी। उन्होंने एक सुयुक्ति सोची। सुलतान की सेना बड़ी थी। आडम्बरों का इतना बाहुल्य था, कि वह सेना एक स्थान से दूसरे स्थान तक बहुत देर में पहुँचती थी। शिवाजी ने विचारा कि यदि यह सेना निरन्तर युद्ध में संलग्न रक्खी जावे, तो थोड़े ही दिनों में वह अशक्त हो जायगी। शिवाजी की सेना की गति बहुत ही तेज थी। यदि आज वे यहाँ हैं, तो दूसरे दिन वे २५, ३० मील की दूरी पर दिखलाई देते थे *। अपने थोड़े से सवारों को लेकर

---

* फ्रांस के प्रसिद्ध वीर नेपोलियन की भी यही चाल रहती थी, अपनी

शिवाजी ने बीजापुर की सेना के दांये-बांये भागों पर आक्रमण करना आरम्भ किया। कभी मध्य में आक्रमण किया, कभी पृष्ठ भाग पर चढ़ गये, इस प्रकार उन्होंने बीजापुर सैन्य में हल-चल मचा दी। किसी को यह नहीं मालूम होता था, कि कब आक्रमण होगा। रसद और युद्धोपयोगी पदार्थों को शिवाजी वहाँ तक पहुँचने ही न देते थे। थोड़े ही दिनों में बीजापुर की सेना शिथिल होगई। इस युद्ध में शिवाजी की बहुत-सी जागीर और दुर्ग बीजापुर के अधिकार में चले गये थे, परन्तु शिवाजी की युद्ध परिपाटी ने सुलतान को हैरान कर डाला।

इसी युद्धकाल में शिवाजी को पिता की आज्ञा का स्मरण आया। उपयुक्त समय समझ कर शिवाजी बाजी घोरपड़े पर चढ़ गये। थोड़ा बहुत युद्ध हुआ और अन्त में बाजी की पूर्ण पराजय हुई। यहाँ शिवाजी ने पितृ-वैर-परिशोध किया। बाजी घोरपड़े को यमपुर जाना पड़ा। उसके गृह और ग्राम में आग लगादी गई, और अन्त में उसके परिवार और ग्राम का चिह्न भी मिटा दिया। इस प्रकार से शिवाजी ने पिता के शत्रु से बदला लिया। शाहजी ने जब यह हाल सुना, तो उनको अपने पुत्र से मिलने की उत्कण्ठा हुई। बहुत दिनों के पश्चात् शिवाजी अपने पिता शाहजी से मिले। सम्मिलन वास्तव में अपूर्व था।

---

द्रुतगति के कारण उसने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध युद्धों में विजय पाई थी। मास्को यात्रा में असिद्धि का कारण यही था, कि वह अपनी द्रुतगति को छोड़कर आडम्बरित होकर गया था।

जिस समय शिवाजी ने सुना कि उनके पिता आ रहे हैं, तो 'धाये आप उघारे पायन'। कहते हैं कि शिवाजी बारह मील तक नंगे पैर गये थे। जिस समय उन्होंने पिता को देखा, उस समय उनके हृदय के भावों को कौन वर्णन कर सकता है? साष्टाङ्ग प्रणाम ग्रहण करके शाहजी ने अपने पुत्र-रत्न को छाती से लगाया और आनन्दाश्रु बहाते हुए 'पुत्र! तुम्हारी सदा ही विजय हो' कह कर आशीर्वाद दिया। बड़े आदर से पिता की जूती उठा कर शिवाजी ने पिता को गद्दी पर बिठाया। पुत्र के शील से शाहजी बड़े ही प्रसन्न हुए। उनके पास कुछ दिनों तक रह कर शाहजी कर्नाटक चले गये।

अन्त में हार मान कर बीजापुर-सम्राट् ने शिवाजी से सन्धि कर ली। उस सन्धि के अनुसार कल्याण से गोवा तक का कोंकण प्रदेश शिवाजी के अधिकार में आ गया। इस समय शिवाजी के पास समस्त कोंकण प्रदेश ( कल्याण से गोवा तक ) तथा भीमा से वार्धा तक का घाटमाला प्रदेश था। इसमें चाकन से नीरा तक, पुरन्धर से कल्याण तक की जागीर भी सम्मिलित थी। अब शिवाजी के पास पाँच हज़ार पैदल सेना और सात हज़ार सवार थे। इस घटना के साथ ही शिवाजी के जीवन का द्वितीय अङ्क समाप्त हुआ। जो शिवाजी कुछ वर्षों पूर्व कुछ भी नहीं थे, जिनके पिता और प्रपितामह एक सामान्य जागीर-दार थे, उन्हीं शिवाजी ने थोड़े ही दिनों में बीजापुर के छक्के छुड़ा दिये।

---

## बारहवाँ परिच्छेद

# मुग़लों की पराजय

अभी तक शिवाजी ने मुग़ल राज्य में हस्तक्षेप नहीं किया था। सन् १६५७ ई० में शिवाजी ने जूनार को लूट लिया था, परन्तु उस समय वह एक सामान्य बात थी, और इसके सिवा उन्होंने दूत भेज कर औरङ्गज़ेब से सन्धि भी कर ली थी। सम्राट् शाहजहां के समय में जब शिवाजी के पिता बीजापुर के सुलतान द्वारा बन्दी कर लिये गये थे, तब उन्होंने सम्राट् से सहायता मांगी थी, परन्तु कई कारणों से वह बात भी आगे न बढ़ी। मुग़ल राज्य से सन्धि रखने में शिवाजी ने जिन कारणों से ढील डाली थी, उन कारणों को औरङ्गज़ेब ने भ्रातृयुद्ध-समय दूर कर दिया था, परन्तु मन ही मन वह शिवाजी से क्रुद्ध भी गया था। जब वह सिंहासनासीन हो गया, तब उसने सन्धि-शर्तों के पूरा करने में गड़बड़ी करनी शुरू की। सन् १६६१ ई० में मुग़ल सेना ने कल्याण* पर अधिकार कर लिया। मुग़लों से युद्ध छिड़ने का यहीं से श्रीगणेश हुआ।

---

* कल्याण उस समय शिवाजी द्वारा अधिकृत भूमि के उत्तर में था।

औरङ्गज़ेब ने शायस्ताख़ाँ को 'दक्षिण' का सूबेदार बना कर भेज दिया था, और गुप्त रीति से उसने उससे मरहटाओं के दमन करने के लिये कह दिया था। सन् १६६१ में जब उपर्युक्त घटना हुई, और १६६२ में बीजापुर से शिवाजी ने सन्धि करली, तब उन्हों ने मुग़लों की ओर दृष्टि डाली। उन्हों ने मुग़ल आक्रमण का कारण जान लिया। वे जान गये कि औरङ्गज़ेब कितना कपटी है। जब उसके ऊपर कठिन समय पड़ा था, तब उसने मुझ से सन्धि करली थी, परन्तु जैसे ही वह स्वच्छन्द हुआ उसने मेरे ऊपर हाथ साफ़ किया। शिवाजी ने मुग़लों के साथ युद्ध करने की तैयारी कर दी। नेताजी पाल्कर औरंगाबाद की ओर भेज दिए गए। उन्होंने जूनार से उत्तरस्थ दुर्गों को अपने अधिकार में कर लिया। इधर शायस्ताख़ाँ ने पूना और चाकन पर मुग़ल-पताका फहरा दी। सूबेदार ने पूना को मुग़ल सेना का केन्द्र बनाया।

पूना को मुग़लों के हाथों में गया देख, शिवाजी को बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने यह भी देखा कि मारवाड़केसरी राजा यशवन्तसिंह भी शायस्ताख़ाँ की सहायता के लिए दिल्ली से आगये हैं। मुग़ल और राजपूत सेना ने पूना के निकट डेरे डाल दिये थे, और स्वयं शायस्ताख़ाँ उसी दुर्ग में रहने लगा था जिसमें शिवाजी ने अपनी बाल्यावस्था व्यतीत की थी। शायस्ताख़ाँ शिवाजी की चतुरता से पूर्णतया परिचित था, अतएव उसने ऐसा सुप्रबन्ध किया था, जिस से कोई महाराष्ट्र देशी व्यक्ति पूना के

आस पास न फटकने पावे। शिवाजी इस समय अपने 'सिंहगढ़' दुर्ग में थे। उनके लिए यह नितान्त असम्भव था, कि वे खुले मैदान में ऐसी बड़ी सेना का सामना कर सकें। अतएव उनको चातुर्य्य का अवलम्ब आवश्यकीय जान पड़ा, क्योंकि इसके विना स्वातन्त्र्य रक्षा और हिन्दू राज्य का प्रसार नहीं हो सकता था।

शिवाजी को यशवन्तसिंह का भी ध्यान था। वे हिन्दुओं द्वारा हिन्दुओं को नहीं कटवाना चाहते थे, अतएव उन्होंने यशवन्तसिंह से मिलना विचारा। एक रात्रि को वे प्रच्छन्न वेश में यशवन्तसिंह से मिले। यशवन्तसिंह ने उनको न पहचाना, परन्तु जब उन्होंने अपना परिचय शिवाजी के दूत के रूप में दिया, तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। शिवाजीने जिस प्रकार बात की थी उसका सारांश उल्लेखनीय है। जिस समय शिवाजी वहाँ पहुँचे उस समय राठौर वीर चिन्तामग्न थे। उन्होंने पूछा—'कहिए आप इस समय किस लिए पधारे हैं?' प्रच्छन्न वेशधारी ने कहा—"महाराज क्षत्रियकुल दीपक वीर राठौर नरेश को दिल्लीश्वर का दास जान कर हमारे प्रभु शोकार्त्त हो रहे हैं। हा! जिस वीर पुङ्गव की ख्याति से समस्त राजस्थान ही नहीं किन्तु वस्तुतः भारतवर्ष भी परिपूर्ण हो रहा है, जिस वीर का क्षिप्रा तट पर युद्धकौशल देख कर दुर्दण्ड औरङ्गजेब भी चकित हो गया, जिस वीर का सम्बन्ध उस हिन्दू कुलतिलक के घराने से है जिसने म्लेच्छों का दास बनना

कदापि स्वीकार नहीं किया, क्या उस वीर का मुसलमानों की ओर से लड़ना उचित है ? महाराज ! आप राजपूत हैं, और हम मरहटाओं में भी राजपूत-रक्त है, अतः भाई-भाई का युद्ध कदापि ठीक नहीं। भवानी हम लोगों को ऐसे युद्ध करने का आदेश नहीं देती है। महाराज ! आपके साथ युद्ध करने में हिन्दू ही हिन्दुओं के सिरों को काटेंगे। हाय! वीर राजपूत अपने भाई ही के हृदय में तलवार भोंक कर रक्त-स्नान करेंगे। हा ! क्या इस प्रकार म्लेच्छों की विजय-कीर्ति प्रसरित करना उचित है ?" शिवाजी की ओजस्विनी वक्तृता सुन कर यशवन्तसिंह विचलित हो गये। उनके सारे भाव एक दम पलट गये। रुकते हुए कण्ठ से उन्होंने कहा—'वीरवर ! तुम ठीक कहते हो, परन्तु मुझे इस समय कोई ऐसा वीर दृष्टिगोचर नहीं होता, जो औरङ्गज़ेब से युद्ध कर भारत की रक्षा कर सके।' शिवाजी ने कहा—"महाराज ! ऐसा न समझिये, शिवाजी आपके आशीर्वाद से अवश्यमेव स्वदेश और स्वधर्म के गौरव की रक्षा में कृतकार्य्य होंगे। नृपतिवर ! जिस दिल्लीश्वर ने हिन्दुओं का नाम काफ़िर रख छोड़ा है, जिसने अनीति का परिचय देकर जज़िया जारी किया है, जिसने हिन्दू-मन्दिरों और पवित्र देवालयों का निरादर कर अपनी क्रूरता दिखलाई है, उसी दिल्लीश्वर का सामना करने के लिये शिवाजी प्रस्तुत हैं। ऐसे समय में आपको सर्वथा यही उचित है, कि आप कुछ दिनों तक पूना से दूर रहें। इस प्रकार से शिवाजी अपने कार्य्य साधन में सफल हो सकेंगे।"

यशवन्तसिंह ने शिवाजी की बात मानली। चलते हुए जिस समय शिवाजी ने अपना वास्तविक परिचय दिया, उस समय हर्षोत्फुल्ल लोचन से देखते हुए राठौर नरेश ने उनको आलिङ्गन कर विदा किया। यशवन्तसिंह से विदा होकर शिवाजी सिंहगढ़ में चले आये।

शायस्ताख़ाँ जब से पूना में रहने लगा, तब से वह मरहटाओं पर विशेष दृष्टि रखता था। उसको यह बात भली भाँति ज्ञात थी, कि मरहटे कितने चालाक हैं। शिवाजी को भी इस बात का पता मिल गया और ख़ाँसाहब की सावधानी कुछ भी काम न आई। उन्होंने अपने कार्य्य की सिद्धि कर ही ली। शिवाजी को पता मिला, कि अमुक दिन एक बरात पूना को जायगी। इसी के द्वारा उन्होंने अपना अभीष्ट सिद्ध करना विचारा। सिंहगढ़ से लेकर पूना तक समस्त पथों पर शिवाजी ने गुप्त रूप से अपनी सेना बिठलादी। पचीस मावलियों को लेकर शिवाजी एक बाग़ में छिप गये। उस समय गहरी अँधेरी रात थी और चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। प्रकाश नाममात्र को भी न था। ऐसे अवसर पर यदि एक भी जलता हुआ दीपक दिखलाई पड़ता, तो शिवाजी का सारा भेद खुल जाता। सुतरां निःशब्द अन्धकार में सेना सन्निवेशन करने लगी। ज्यों-ज्यों रात्रि का प्रगाढ़ अन्धकार बढ़ता गया, त्यों-त्यों शिवाजी की छिपी हुई सेना आगे बढ़ने लगी।

तिमिराधिक्य से वह बाग़, जिसमें शिवाजी, तानाजी मूलसरे

और पच्चीस मावली छिपे हुए थे, किसी को दिखलाई न देता था। जाती हुई बरात बाग़ के पास आ गई, और शिवाजी उस बरात में मिल गये। क्रमानुसार पूना नगर का गोलमाल शान्त होगया था। निस्तब्ध नगर में केवल चौकीदारों का शब्द कभी-कभी सुनाई पड़ता था। बराती लोग शायस्ताख़ाँ के महल के नीचे से होकर जाने लगे। महल की ललनाएँ झरोखों में बैठ कर बरात का आनन्द लूटने लगीं। धीरे-धीरे बरात चली गई और महलों पर से देखने वाले भी शयन के लिये अपने-अपने स्थानों पर चले गये, परन्तु शिवाजी चुपके से दुर्ग के नीचे छिप रहे। थोड़ी देर में बाजे इत्यादि का शब्द शान्त होगया। रात्रि की गम्भीरता बढ़ती ही गई। इतने में कमन्द द्वारा शिवाजी के मावली योद्धा ऊपर पहुँच गये। कमन्द एक खिड़की के पास फेंका गया था और वह खिड़की शायस्ताख़ाँ के शयनागार में थी। ख़ाँसाहब और उनके यहाँ की स्त्रियाँ सब उस समय शयनावस्था में थे।

नवागन्तुकों के आने से शब्द हुआ और उस शब्द को सुन कर ऊँघती हुई स्त्रियाँ उठ बैठीं। चिराग़ जला कर देखा, तो रौद्र मूर्ति धारण किये हुये मावली सामने खड़े हैं, हठात् एक भीषण चीत्कार हुआ। चीत्कार से समस्त महल में कोलाहल होने लगा। शायस्ताख़ाँ भी जाग पड़े और अति शीघ्र ही उनको इस आपत्ति की सूचना मिल गई। 'किंकर्त्तव्य विमूढ़' ख़ाँसाहब सोच-विचार में पड़ गए। अचानक मावलियों का दुर्ग में प्रवेश सुन

खाँसाहब के देवता कूच कर गये थे। ऐसे समय में खाँसाहब ने भागना ही उचित समझा। इधर-उधर देख कर एक दरवाज़े की ओर लपके, परन्तु वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा, कि काल के समान एक मावली बर्छी लिये हुए खड़ा है। खाँसाहब वहाँ से भी उड़े और दूसरे दरवाज़े पर जा पहुँचे, परन्तु वहाँ भी वही अवस्था हुई। अब उन्होंने देखा कि सब द्वार घिरे हुए हैं। भाग्य-वश उनकी दृष्टि खिड़की की ओर गई। ऐसी आपत्ति में उन्होंने उसी के द्वारा भाग कर अपने प्राण बचाना विचारा। इतने में 'हर-हर महादेव' के शब्द से पास का कमरा गूँज उठा, पलक मारते ही मावली वीर उस कमरे में भी आ गए। खाँसाहब भागे और मावलियों ने उनका पीछा किया। खाँसाहब इधर-उधर देख खिड़की में लटक पड़े। इतने ही में एक मावली वीर ने लपक कर शस्त्राघात किया, जिससे शायस्ताख़ाँ की दो अंगुलियाँ कट गईं, परन्तु ख़ाँसाहब ने पीछे मुड़ कर न देखा, और साफ़ निकल भागे।

ख़ाँसाहब तो अपने प्राण बचा ले गये, परन्तु उन्होंने अपने परिवार की कुछ भी ख़बर न ली। सारे पहरे वालों सहित ख़ाँसाहब का पुत्र अबुलफ़तह मारा गया। उस समय शिवाजी ने देखा, कि सारा महल रक्त से रञ्जित हो रहा है। भीषण रूप धारण कर मावली मुसलमानों के सिरों को भुट्टों की तरह काट-काट कर इधर-उधर फेंक रहे हैं। सारा प्रासाद आहतों के आर्तनाद, तल-वारों की झनझनाहट और वीरों के वीर हुँकारों से परिपूरित हो

रहा था। दुर्ग का द्वार खोल दिया गया। बाहर की सेना ने भी दुर्ग में प्रवेश किया। वीरों के हुँकार से समस्त दुर्ग काँप उठा। नवागन्तुकों की वीर-शब्द ध्वनि से मुसलमानों का दिल टूट गया। कुछ मुसलमान आगा-पीछा न सोच कर भागने लगे। इतने में एक मुसलमान वीर ने डाँट कर कहा—'कायरो ! काफ़िरों से क्यों डरते हो ? आओ, एक बार मिल कर इनको मार भगावें।' उसके शब्द से मुसलमान वीर रुके, और वह आगे बढ़ा। आगे बढ़ते ही उसने शिवाजी को देखा। उनके देखते ही उसके हृदय में आग लग गई। खड्ग को बढ़ा कर उसने शिवाजी पर आक्रमण किया। अचानक यवन योद्धा के खड्ग को अपने सिर पर देख कर शिवाजी ने भवानी का नाम लेकर अपना बर्छा सँभाला, पलक मारते ही क्या देखते हैं कि एक वीर हवलदार ने अपने बर्छे के आघात से उस यवन को भूतलशायी कर दिया है। हवलदार के कार्य से प्रसन्न होकर शिवाजी आगे बढ़े। आगे बढ़कर क्या देखते हैं कि स्त्रियों और बालकों के आर्त शब्द से महल परिपूर्ण हो रहा है। वीर मावली मुसलमानों को मारते-काटते हुए इतस्ततः दौड़ रहे हैं। मशालों द्वारा हताहतों की दशा साफ़ दिखलाई देने लगी। किसी का सिर अलग पड़ा हुआ है, किसी का कबन्ध उठ-उठ कर तलवारों के हाथ फेंक रहा है, किसी के हाथ पैर कटे पड़े हैं, रक्त की नाली बह रही है—ऐसी दशा देख, शिवाजी ने वीर मावलियों को पास बुला कर कहा—"अब व्यर्थ और हत्या न की जाय। हमारा कार्य सफल होगया।"

लड़ाई शान्त हुई, दुर्ग से बचे हुये मुसलमान निकाल दिये गये। एक बार पुनः शिवाजी का हृदय विकसित हो गया क्योंकि जिस दुर्ग में उन्होंने बाल्यकाल व्यतीत किया था वही पुनः उनके अधिकार में आ गया—यह देख उनके हृदय में आनन्द-स्रोत बहने लगा। अन्धकारमय रजनी में शिवाजी अनायास ही पूना से निकल कर सिंहगढ़ की ओर बढ़े। शायस्ताखाँ ने देखा कि मशालों की रोशनी में मरहटों की सेना सिंहगढ़ की ओर चली जा रही है। दूसरे ही दिन कुछ मुग़लों ने सिंहगढ़ पर चढ़ाई की, परन्तु सिंहगढ़ की तोपों के सामने वे न ठहर सके। थोड़ी ही देर में उनके पैर उखड़ गये, और वे भाग निकले। भागती हुई सेना का नेताजी पाल्कर ने पीछा किया और उसे थोड़ी दूर तक खदेड़ कर वे लौट आये।

यह प्रथम ही अवसर था जब कि महाराष्ट्रीय सैन्य ने दुर्दान्त मुग़लों का मुख मर्दन किया। इस विजय ने शिवाजी की ख्याति को बहुत ही बढ़ा दिया। इस विजय के पश्चात् शिवाजी ने औरङ्गज़ेब द्वारा अधिकृत स्थानों पर अधिकार करना प्रारम्भ किया। यह घटना सन् १६६३ में हुई थी। अब शिवाजी का आक्रमण सूरत पर हुआ।

सूरत इस समय व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था। यूरोप तथा पश्चिमी ऐशिया से सामुद्रिक व्यापार यहाँ बहुत होता था। यहीं बड़े-बड़े धनशाली महाजन रहते थे। भारतवर्ष में अँगरेज़ों ने पहले-पहल सूरत ही में अपनी कोठी खोली थी। सूरत नगर

उस समय भारतवर्ष के प्रायः समस्त नगरों से व्यापार में बहुत ही बढ़ा-चढ़ा हुआ था। मक्का जाने के लिये यह प्रधान बन्दरगाह था, अतएव हज करने वालों की यहाँ ख़ूब भीड़ रहती थी। देशी और विदेशी व्यापारियों की यहाँ कुछ कमी नहीं थी। हालैण्ड और पुर्तगाल वालों ने भी यहाँ अपनी-अपनी कोठियाँ खोल रक्खी थीं। इन सब बातों के कारण सूरत उस समय एक प्रभूत धनशाली नगर था। उसकी अपार सम्पत्ति का हाल सुनकर शिवाजी ने उसे लूट लेना विचारा। कहा जाता है, कि शिवाजी ने गुप्त रूप से कई दिनों तक सूरत में घूम कर उसकी अतुल सम्पत्ति की थाह ली थी। जनवरी सन् १६६४ में एक दिन क्या देखते हैं, कि ४००० सवारों को लेकर शिवाजी सूरत पर चढ़ आये हैं। इस चढ़ाई के कारण नगर में हाहाकार मच गया। लोग इधर-उधर भागने लगे, परन्तु शिवाजी की सेना ने किसी को न सताया। छः दिन तक नगर और मक्का के यात्रियों को लूट कर शिवाजी वहाँ से लौट पड़े। उस समय अङ्गरेज़ी कम्पनी के प्रेसीडेण्ट सर जार्ज आक्स्यनडाइन (Sir George Oxenden) थे। केवल उन्हींने शिवाजी का सामना किया, और किसी देशी या विदेशी ने उनका सामना न किया। उन्होंने अपनी कोठियों की रक्षा बड़े साहस से की, और उनके आदमियों ने भी बड़ी वीरता दिखाई, अतएव अङ्गरेज़ी कोठियाँ लुटने से बच गईं। उनके आस-पास और लोगों की जो दुकानें और मकान थे वह भी बच गये। हाँ, अँगरेज़ों का एक बाग़ जो

बहुत ही सुन्दर था, अवश्य नष्ट हो गया। शिवाजी की फ़ौज ने उसको उजाड़ दिया। जब इस बात की सूचना दिल्ली पहुँची, और सर जार्ज की वीरता का हाल बादशाह ने सुना, तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने सर जार्ज के लिए एक ख़िलअ़त भेजी, और कम्पनी के माल पर ढाई रुपया सैकड़ा महसूल भी कम कर दिया। थोड़े दिनों के बाद शिवाजी ने दुबारा सूरत पर आक्रमण किया। इस बार भी ख़ूब लूट-मार हुई, और शहर में आग लगादी गई। शहर के मुसलमान अधिकारी से कुछ करते-धरते न बन पड़ा, परन्तु अँगरेज़ों ने इस बार भी अपने माल-असबाब को लुट जाने से बचा लिया।

प्रथम वार सूरत को लूट कर जब शिवाजी रायगढ़ लौटे थे, तब उनके पिता का देहान्त हो चुका था। इस सूचना को उन्होंने रायगढ़ ही में सुना था। विधिवत् श्राद्धादि कार्य करने के लिये शिवाजी सिंहगढ़ गये, और वहाँ सब कामों को निबटा कर वे पुनः रायगढ़ लौट आये। शाहजी ने अपनी मृत्यु के समय बंगलौर के आस-पास की बहुतसी जागीर और अरती, तंजोर पोर्टोनोबो इत्यादिक अन्य जागीरें भी छोड़ी थीं जो पश्चात् शिवाजी के अधिकार में आ गईं।

## तेरहवाँ परिच्छेद

# रुद्रमण्डल विजय

जिस समय शायस्ताख़ाँ दुर्ग से भाग निकला था, उस समय उसने औरंगज़ेब को पत्र लिखा। उस पत्र में उसने अपनी सेना की यथेष्ट निन्दा की थी, और साथ-ही-साथ यह भी लिख दिया था, कि यशवन्तसिंह के हार्दिक भाव शिवाजी की ओर झुक गये हैं। पत्र को पाकर औरंगज़ेब ने शायस्ताख़ाँ को उलटा बुला लिया और सन् १६६४ में अपने पुत्र मुअज़्ज़म को 'दक्षिण' का सूबेदार बनाकर भेजा। कुछ सोच-समझ कर राजा यशवन्तसिंह को उसकी सहायता के लिए वहीं रहने दिया। इन दोनों से अपनी कार्यसिद्धि न होती देख, उसने प्रसिद्ध आमेराधिपति राजा मिर्ज़ा जयसिंह को रवाना किया। सन् १६६५ ई० के मार्च में आमेराधिपति दल-बल सहित पूना पहुँच गए। इनके साथ में मुग़ल सरदार दिलेरख़ाँ भी था। शायस्ताख़ाँ की तरह बेकार न पड़े रहकर मिर्ज़ा राजा ने दिलेरख़ाँ को पुरन्धर दुर्ग अवरुद्ध करने के लिए भेजा और स्वयं सिंहगढ़ को घेर कर उन्होंने रायगढ़ तक अपनी सेना को अग्रसर किया।

शिवाजी बड़ी आपत्ति में पड़े। हिन्दुओं का हिन्दुओं के हाथों सिर कटाना शिवाजी को कदापि अभीष्ट न था। कहते हैं कि

भवानी ने उनको ऐसा करने को मना किया था। दूसरी बात यह भी थी, कि उस समय वहाँ जयसिंह की समता का कोई भी तीक्ष्णबुद्धि योद्धा न था, अतएव उनपर विजय पाना कुछ सहज काम न था। जयसिंह ने अपना काम प्रारंभ कर दिया था। दिलेरखाँ पुरन्धर पहुँच गये थे। उस समय पुरन्धरमें मुरारबाजी देशपाँडे थे। उन्होंने बड़ी वीरता से दिलेरखाँ को रोका। कई दिन युद्ध हुआ, परन्तु अन्त में मुरारबाजी मारे गए। पुरन्धर मरहटों के हाथ से जाता रहा। मुग़ल-सेना एक के बाद दूसरे दुर्ग को हथियाने लगी। शिवाजी अपनी अधिष्ठात्रीदेवी के मन्दिर में गये और ध्यानमग्न होकर उस की आराधना करने लगे। ध्यानावस्था में उनको ऐसा भासित हुआ कि मानो देवी उन्हें जयसिंह के साथ युद्ध करने से रोक रही है। देवी का आदेश मान शिवाजीने जयसिंह से सन्धि करना ही उचित समझा। सन्धि शीघ्र ही होगई। मुग़लों के जिन-जिन दुर्गों पर शिवाजीने अपनी विजयपताका फहरा दी थी, वे मुग़लों को वापस कर दिये गए। विलुप्त अहमदनगर राज्यके टूटे-फूटे दुर्ग जिनको शिवाजीने ठीक करवाया था, और जो नये-नये दुर्ग बनवाये थे उन ३२ दुर्गों में से २० दुर्ग औरंगज़ेब को दे दिये, और बाकी १२ दुर्ग शिवाजी के पास बतौर जागीर के रह गए। औरङ्गज़ेब को शिवाजी ने जो-जो प्रदेश दे दिये थे, उनके बदले में मुग़ल सम्राट्ने शिवाजी को बीजापुर राज्यान्तर्गत कुछ प्रदेश दे दिए, और साथही उनके पुत्र शम्भाजी को पंजहज़ारी मनसबदार नियत किया।

उपर्युक्त सन्धि हो जाने के बाद राजा जयसिंह ने बीजापुर पर चढ़ाई की। शिवाजी ने भी राजा जयसिंह का साथ दिया। शिवाजी की वीरता के कारण राजा जयसिंह उनका बड़ा मान करते थे। सहवास के कारण उन दोनों की मित्रता दिन पर दिन घनिष्ठ होने लगी। दोनों वीर सदा एक ही साथ रहते थे। चढ़ाई में एक दूसरे को सहायता पहुँचाते थे। थोड़े ही दिनों में इन दोनों वीरों ने बीजापुर के कतिपय दुर्ग छीन लिए। अब के शिवाजी ने दुर्गम पर्वतीय रुद्रमण्डल दुर्ग के लेने का विचार किया। यह दुर्ग राजा जयसिंह के डेरे के समीप था, परन्तु शिवाजी से वह ५ या ६ कोस की दूरी पर था। एक रात्रि को मावली सुसज्जित होने लगे। एक पहर रात्रि व्यतीत होने पर एक सहस्र मावली रुद्रमण्डल की ओर चुपचाप शीघ्रता से चलने लगे। विकट अन्धेरी रात्रि में महाराष्ट्र-सेना दुर्ग के नीचे पहुँच गई। इस दुर्ग के चारों ओर समभूमि है, परन्तु उसके मध्य ऊँची ज़मीन है जिसके ऊपर रुद्रमण्डल दुर्ग बना हुआ है। शिखर प्रायः सीधा खड़ा हुआ है। अतएव उसके ऊपर की चढ़ाई बिलकुल सीधी पड़ती है, जिसके कारण उसके ऊपर चढ़ना हँसी-खेल नहीं है।

शिवाजी ने देखा कि दुर्ग पर जाने के लिये केवल एक रास्ता है। वह भी युद्ध-समय होने के कारण सुरक्षित रक्खा जाता है, और अन्य स्थान से आक्रमण करना प्रायः असम्भव-सा प्रतीत होता है। परन्तु असम्भव को सम्भव कर दिखलाने के लिये शिवाजी ने दुर्गम पथावलम्बन किया। धीरे-धीरे शिवाजी की

सेना पर्वत पर चढ़ने लगी। सैनिक कहीं लेट कर, कहीं पेट के बल, कहीं घुटने टेक कर और कहीं डालियां पकड़ कर ऊपर चढ़ते थे। थोड़ी दूर आगे बढ़ कर शिवाजी ने देखा कि परिखा पर बहुत-सी मशालें जल रही हैं। हठात् शिवाजी रुक गये। उनको ज्ञात हो गया कि दुर्ग-रक्षक मेरे आक्रमण का हाल जान गये हैं, अतएव शिवाजी ने बड़ी सावधानी से अपने सनिकों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। शैलशिखरों पर कूदते-फाँदते वीर मरहटे चुपचाप आगे बढ़ने लगे। सामने सौ हाथ का मैदान दिखलाई पड़ा जिसके आगे वृक्षों का सिलसिला था। ऐसे मैदान से दृष्टि बचाकर आगे बढ़जाना नितान्त असम्भव समझ कर शिवाजी ने अपने सुहृद् तानाजी से कुछ सलाह की। सलाह हो जाने के बाद शिवाजी ने एक छोटा-सा पथरीला नाला देखा, जिसके दानों किनारे ऊँचे उठे हुए थे। उसके भीतर चलने से सम्भवतः शत्रु महाराष्ट्र सैनिकों को नहीं देख सकते थे। सारी सेना उस नाले में होकर आगे बढ़ने लगी। थोड़ी देर में सेना वृक्षों के समीप पहुँच गई। शिवाजी ने मन-ही-मन भवानी को नमस्कार किया।

अचानक एक महाराष्ट्र-सैनिक गिरा। देखा गया तो उसका वक्षःस्थल एक तीर से विदीर्ण हो गया है। देखते-ही-देखते दूसरा सैनिक धराशायी हुआ। सनसनाते हुए तीसरे तीर ने तीसरे योद्धा को पृथ्वी पर गिरा दिया। अब तो तीरों की बौछार होने लगी। शिवाजी की समस्त सेना पेड़ों की आड़ में होगई। शिवाजी ने जान लिया कि शत्रु युद्ध के लिये सन्नद्ध हैं,

अतएव आज हमको दुर्ग-विजय में भीषण युद्ध करना होगा। इतने में तानाजी ने आकर कहा—"अच्छा होगा कि हम लोग लौट पड़ें। यदि दुर्ग आज न मिला तो कल मिल जायगा। निरर्थक सेना कटाने से क्या लाभ होगा?" गम्भीर भाव धारण कर शिवाजी ने कहा—'ताना जी! क्या कहते हो? रुद्रमण्डल आज ही जीता जायगा।' इतना कह कर शिवाजी चुपचाप उस वृत्त-श्रेणी से आगे बढ़ने लगे और शत्रु को अन्धा बनाने के लिये १०० सैनिकों को दूसरी ओर से आक्रमण करने के लिये भेजा। शीघ्र ही शिवाजी ने दुर्ग के दूसरी ओर गोलियों का शब्द सुना। शिवाजी का प्रयोजन सिद्ध हो गया। शत्रुओं ने यह समझा कि शिवाजी ने उधर से ही आक्रमण किया, अतः वे उसी ओर दौड़ने लगे। ऐसे उपयुक्त समय को पाकर शिवाजी ने दुर्ग पर आक्रमण किया और आक्रमण करते समय अपने सैनिकों को सम्बोधन करके कहा—'वीरो, चलो आज अपनी शूरता का परिचय दो, तुम लोगों ने अनेक बार बल-विक्रम दिखलाये हैं, परन्तु आज उस भीमविक्रम को पराकाष्टा पर पहुँचाना है। वीरो! वीरों को ऐसा समय बड़ी कठिनता से मिलता है। अब क्या देखते हो आओ, आगे बढ़े"। इसी प्रकार प्रोत्साहित करते हुए शिवाजी आगे बढ़ने लगे। सामने देखते है कि तानाजी खड़े हैं। शिवाजी ने उनको गले से लगाते हुए कहा—'सुहृदवर! बाल्यावस्था की प्रगाढ़ मैत्री का अब इस कठिन समय पर परिचय दीजिये।'

शिवाजी के उत्साह-वर्द्धक शब्दों से वीरों के हृदय वीर-रस-पूर्ण हो गये। अल्पकाल ही में शिवाजी गढ़ की प्राचीर के पास पहुँच गये। उस समय उन्होंने परकोटे पर एक सिपाही को देखा। देखते-ही-देखते एक वीर मावली के तीर ने उसके प्राण हरण कर लिये। सिपाही के नीचे गिरने का शब्द हुआ जिसको सुनकर कई सौ सैनिक वहाँ आ गये। अब शिवाजी ने विचारा, कि छिपने की कुछ आवश्यकता नहीं है और न अब छिपने से काम ही चल सकता है। यह सब सोच-विचार कर शिवाजी ने अपने वीर मावलियों को अग्रसर होने की आज्ञा दी। 'हर हर महादेव' का गगनभेदी वीर-रव करते हुए महाराष्ट्र वीर दीवार के ऊपर चढ़ने लगे। एक दल वृत्तों की आड़ लेकर क़िले की दीवार पर खड़े हुए सैनिकों पर शस्त्र छोड़ने लगा। उधर से भी 'अल्लाहो अकबर' का शब्द आकाश को कम्पित करने लगा। शीघ्र ही घमासान लड़ाई होने लगी। तीर और बर्छों की मार से सैनिक पृथ्वी पर लोटने लगे। थोड़ी ही देर में प्राचीर-पार्श्व शवों से परिपूर्ण हो गया। लाशों ने टीलों का काम दिया। योद्धागण उन्हीं पर खड़े होकर शस्त्राघात करने लगे। मुसलमान भी उग्र रूप धारण कर प्राचीर पर से कूद-कूद कर मावलियों के मध्य में आने लगे। इतने में दुर्ग के भीतर से 'शिवाजी की जय' सुनी गई। सबने उसी ओर कान लगाये और पुनः वही शब्द सुनाई दिया। इस वज्रनाद ने वहाँ की लड़ाई को एक क्षण के लिए रोक दिया। इसका

तात्पर्य्य थोड़ी देर में सब की समझ में आगया। दूसरी ओर के गये हुये सैनिकों ने दुर्ग में प्रविष्ट होकर सिंहनाद किया था। अब क्या था, मुसलमानों का उत्साह भङ्ग होने लगा। वे लोग भेड़ों की तरह एक ही ओर को दौड़ने लगे। शिवाजी भी प्राचीर पर चढ़ने का उद्योग करने लगे और अन्त में सफलीभूत हुए। प्राचीर पर खड़े होकर मरहटों ने देखा कि एक महाराष्ट्र युवा ने पठानों के झण्डे को लात मारकर नीचे गिरा दिया है, और उसी पर खड़े होकर वह महाराज शिवाजी की जय बोल रहा है।

शिवाजी ने दुर्ग में प्रवेश किया, और वे दुर्ग के द्वार की ओर बढ़े। पहरेवालों को यमपुर पहुँचाकर द्वार-रक्षक से द्वार खोलने के लिए कहा गया, परन्तु उसने कहा कि द्वार नहीं खोला जायगा। 'नहीं खोला जायगा ?' कह कर एक मरहटे ने उसके सिर को बर्छे से छेद डाला, और वहाँ आग लगा दी। थोड़ी ही देर में समस्त दुर्ग में अग्नि भभक उठी। इस अग्निकाण्ड में कुछ वीर मावली भी आहुति होगये। फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ, परन्तु मुसलमानों के पैर उखड़ गये, और वे दुर्ग को छोड़कर भागने लगे। शिवाजी के अधिकार में दुर्ग आगया। जिस समय दुर्ग-विजय की ख़बर जयसिंह के पास पहुँची, तो उन्होंने आश्चर्यान्वित होकर कहा था, कि 'यह दुर्ग इतनी जल्दी हस्तगत हो जायगा, इसकी मुझे आशा न थी।'

---

## चौदहवाँ परिच्छेद

# दिल्ली में शिवाजी

शिवाजी ने जयसिंह से जो सन्धि की थी, उसका कुछ वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। उसमें अन्य प्रस्तावों के सिवा एक यह प्रस्ताव भी था, कि मैं एक लाख 'पागोड़ा' वार्षिक बतौर खिराज के दिया करूँगा और इसके लिए सम्राट् शिवाजी को बीजापुर के इलाक़े पर 'सरदेशमुखी' और 'चौथ' लगाने का अधिकार देंगे। औरङ्गज़ेब के पास जब सन्धि-प्रस्ताव पहुँचा तब उसने सब बातें मंज़ूर कर लीं, परन्तु 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' के बारे में वह चुप्पी साध गया, और उसने शिवाजी को कुछ उत्तर न दिया। जब शिवाजी को कुछ उत्तर न मिला, तब उन्होंने यह सार निकाल लिया कि कुछ उत्तर न देना भी एक प्रकार की स्वीकृति ही है। तदनुसार उन्होंने 'चौथ' जारी की। जिस समय राजा जयसिंह शिवाजी की सहायता से बीजापुर को फ़तह कर रहे थे, अचानक औरङ्गज़ेब का निमन्त्रण-पत्र आया, जिसमें उन्होंने शिवाजी को अपने दरबार में बुलाया था।

शिवाजी ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। पाठक यहाँ पर कदाचित् चकित हुए होंगे, कि शिवाजी सरीखे नीतिज्ञ पुरुष

जान-बूझ कर औरङ्गज़ेब के कपट-पाश में फँसने को क्यों उद्यत हो गये। सच तो यों है, कि शिवाजी ने दिल्ली जाने में भी अपनी राजनैतिक बुद्धि की पारदर्शिता दिखाई थी। दिल्ली में उनका जाना उनके निमित्त अतीव लाभदायक था। प्रथम तो इसलिए कि औरङ्गज़ेब के दरबार में बहुत से ऐसे राजपूत वीर सरदार थे जो हृदय से शिवाजी से सहानुभूति रखते थे, परन्तु स्वयं सहायता देने में अक्षम थे। शिवाजी को ऐसे वीर-पुङ्गवों से मिलना अत्यन्त आवश्यक था। दूसरे वैरी के घर में प्रवेश कर उसके यहाँ की अवस्था से परिचित होने का भी अच्छा अवसर था। जाने से पूर्व राजा जयसिंह से शिवाजी की बातचीत हुई थी उसमें शिवाजी ने कहा था, कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे धोखा देकर वह फँसा ले; परन्तु जब राजा जयसिंह ने ऐसा न होने का वचन दे दिया, तो शिवाजी सहर्ष चलने को उद्यत हो गये। सन् १६६६ के वसन्तकाल में पाँचसौ सवार, और एक हज़ार पैदल सेना लेकर शिवाजी दिल्ली की ओर चले। साथ में पुत्र शम्भाजी तथा एक दो विश्वस्त मित्र भी थे।

दिल्ली में प्रवेश करते ही शिवाजी का हृदय भर आया। पीछे की ओर मुड़ कर सोचने लगे कि हा! क्या यह वही दिल्ली है, जिसमें चौहान राजा पृथ्वीराज स्वातन्त्र्य धारण कर राज्य करते थे। काल-चक्र के कारण उसी दिल्ली की यह अवस्था है! एक पास के खड़े हुए साथी से शिवाजी ने कहा—'मैं जिस स्थान पर खड़ा हुआ हूँ उसके प्राचीन

गौरव पर विचार करने पर उन महामान्य राजाओं की विमल कीर्ति का स्मरण आने से स्वप्न की भाँति नई-नई आशाएँ मेरे हृदय में उठने लगी हैं। क्या भारत के विशाल-भाल में सदा के लिये अँधेरा ही लिखा है ? नहीं, भारत का सौभाग्य-सूर्य्य एक वार पुनः उदय होगा।' इस प्रकार बातें करते वे शहर-पनाह तक पहुँच गये।

दिल्ली आज मनोहर शोभा धारण किये हुए थी। इतिहास पढ़ने वाले भली भाँति जानते हैं, कि सम्राट् औरङ्गज़ेब तड़क-भड़क को कितना नापसन्द करता था। औरंगज़ेब सदा सामान्य वेश में रहता था, परन्तु वह इस बात को ख़ूब जानता था कि राजकीय कार्य्य-साधनार्थ चमक-दमक की आवश्यकता होती है। शिवाजी आज आ रहे हैं, दिल्ली को वे देखेंगे, अतएव 'पहाड़ी चूहे' पर अपना आतङ्क जमाने के लिये औरंगज़ेब ने इन्द्र-समता का परिचय देना आवश्यक समझा, क्योंकि साम्राज्य का वैभव देख कर शिवाजी अपनी हीनता समझ जायँगे। अतएव आज दिल्ली ख़ूब ही सजाई गई थी। जिस समय प्रसिद्ध महाराष्ट्र वीर ने दिल्ली में पैर रक्खा, दिल्ली में एक प्रकार की हलचल मच गई। 'जो जैसई तैसई उठि धावा' वाली कहावत चरितार्थ हुई। कुल-कामिनियाँ झरोखों में बैठ कर विश्व-विश्रुत योद्धा को देख कर अपने नेत्र सफल करने लगीं। शिवाजी भी नगर की अपूर्व शोभा को देखते हुए आगे बढ़ने लगे। थोड़ी देर के बाद शिवाजी 'दरबार आम' के पास जा पहुँचे। औरंगज़ेब के समय में 'दरबार आम' बहुधा नहीं हुआ करता था। वह अपने वज़ीरों

के साथ ही बैठ कर राज्य-काज किया करता था। परन्तु आज आडम्बर लाद कर वह 'दरबार आम' में बैठा था। शिवाजी ने भी ये सब बातें ताड़ ली थीं। अब उनको यह देखना था, कि आज औरङ्गज़ेब उनका किस प्रकार से सत्कार करता है।

जिस समय वे राजसदन में प्रविष्ट हुए, उन्हें मालूम हुआ कि वे एक साधारण कर्मचारी की भांति उसके महलों में खड़े हैं। जिसने २० वर्ष पर्य्यन्त रक्त बहा कर स्वजाति और स्वदेश की रक्षा की थी, आज वही वीर पुरुष शाहंशाह से मुलाक़ात करने के लिए राजप्रासाद में आया है। अपने चारों ओर देख शिवाजी ठिठक गये। उनके चक्षुओं के भाव बदल गये, कुछ भृकुटियाँ चढ़ गईं, सारा रक्त उबल उठा! क्या ख्याल कर? यही, कि आज मुझे 'नज़र' देनी पड़ेगी। कहते हैं, कि जिस दरवाज़े से शिवाजी दरबार में प्रवेश करने को थे, औरङ्गज़ेब ने उसे बहुत ही नीचा बनवाया था। वह जानता था कि शिवाजी उस के सामने नहीं झुकेंगे, अतएव छोटे दरवाज़े के कारण उनको सिर झुका कर आना पड़ेगा। इस प्रकार से उनका सिर नीचा हो जायगा। दरवाज़े पर आकर शिवाजी ठहर गये और कुछ देर तक विचार कर आगे बढ़े, परन्तु आगे को सिर झुका कर नहीं, प्रत्युत अच्छी तरह से तन कर। वे यहाँ तक तने कि सिर पीठ की ओर बहुत झुक गया, और इस प्रकार से भीतर पहुँच कर उन्होंने सिंहासन के सामने 'नज़र' रक्खी। औरङ्गज़ेब ने 'नज़र' ग्रहण की, परन्तु

शोक ! उसने शिवाजी का तनक भी आदर न किया और पंज हज़ारियों के स्थान पर उनको बैठने का आदेश दिया। अपना यों निरादर होता हुआ देख शिवाजी के नेत्र अग्निवत् प्रज्वलित हो उठे। क्रोधावेश के कारण उनका सारा शरीर काँपने लगा, परन्तु फिर कुछ सोच-समझ कर उन्होंने गम्भीर और शान्त भाव धारण किया।

दरबार ख़तम हुआ, शिवाजी के रहने के लिए एक मकान निर्दिष्ट किया गया, और सन्ध्या होते-होते शिवाजी उस मकान में पहुँच गये। प्रातःकाल उन्होंने उठ कर जो देखा, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका सारा मकान पहरेदारों से घिरा हुआ है। शिवाजी ने थोड़ी देर में यह भी जान लिया, कि शस्त्रधारी पहरेदार जब तक अच्छी तरह से परिचय नहीं पा लेते तब तक किसी को भी भीतर नहीं आने देते। शिवाजी जान गये कि वे बन्दी कर लिये गये, वनराज पिंजड़े में फँस गया। शिवाजी, औरङ्गज़ेब के बन्दी हो गए।

औरङ्गज़ेब की कपट-लीला स्पष्ट रूप से प्रकट हो गई। सम्मान-सूचक पत्र द्वारा भुलावा देकर यवन सम्राट् ने शिवाजी को फाँस लिया। शिवाजी ने अपने मन में कहा, औरङ्गज़ेब, तुमने शिवाजी को पहचाना नहीं है। अब की बार तुम देख लोगे कि दग़ाबाज़ी करने में क्या मज़ा मिलता है ? अब शिवाजी उसके कपट-जाल को काट कर बाहर आने की युक्ति सोचने लगे। कार्य सिद्ध करने के लिए शिवाजी को बीमार बनना पड़ा।

थोड़े ही दिनों में सारी दिल्ली में यह बात फैल गई, कि शिवाजी को अतिशय सङ्कटजनक पीड़ा है। अहर्निश शिवाजी के मकान के दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द रहती थीं। वैद्यों की अच्छी ख़ासी भीड़ वहाँ लगी रहती थी, रोग दिन-दिन बढ़ता जाता था। उस समय दिल्ली में यह ख़बर थी, कि यदि दो एक दिन शिवाजी को ऐसी पीड़ा रही, तो उनका प्राणान्त हो जायगा। लोगों के सामने औरङ्गज़ेब भी ख़ूब शोक प्रकट करता था। साथ ही शिवाजी पर पूरी चौकसी भी रखता था।

थोड़े दिनों के बाद नगर में यह ख़बर फैली, कि शिवाजी ने रोग-निवृत्ति के लिए दान करना प्रारम्भ किया है। मिष्टान्न दान होने लगा। बड़े-बड़े झालों में भर के मिठाइयां बाँटी जाने लगीं। एक वार दिल्ली में लड्डुओं की वर्षा हुई। ऐसे अवसर पर जो चूक गया वह बहुत दिनों तक पछताया। अन्त में एक दिन इन्हीं झालों में शिवाजी और शम्भाजी बैठ गये, और चुपचाप बाहर निकल गये। पहरेदारों को सन्देह भी न हुआ, क्योंकि शिवाजी प्रति दिन बड़ी-बड़ी झालों* में मिठाइयां बाँटते थे। बहुत दूर निकल जाने के बाद झाल उतारी गईं। सायंकाल की अँधियारी अच्छी तरह छा गई थी। झाल खोली गईं और शिवाजी तथा शम्भाजी बाहर निकल आये। निकल आने के बाद दोनों ने भवानी को प्रणाम किया। जिस औरंगजेब ने अपने असाधारण चातुर्य्य,

* कभी कभी इन झालों की ऊँचाई तीन या चार हाथ की होती थी, जिनको ८ या १० कहार उठा कर ले जाते थे।

बुद्धि-कौशल और रणनैपुण्य से अपने भाइयों को परास्त किया था, जिसने बाप को दग़ाबाज़ी से बन्दी कर लिया था, जिसने चालाकी से तख़्त ताऊस ले लिया था, उसी औरंगज़ेब की आँखों में धूल झोंक और उसे अंगूठा दिखला कर शिवाजी उसके पंजे से निकल आये।

झालों में से निकल कर शिवाजी और शम्भाजी ने सन्यासियों का वेश धारण किया और 'हरेर्नाम, हरेर्नाम' कहते हुए वे आगे बढ़े। रास्ते में किसी पहरेदार ने टोका, तो कह दिया कि 'बाबा! हम तीर्थ स्थान मथुरा, वृन्दावन को जा रहे हैं।' ऐसा उत्तर पाने पर उनको पुनः किसी ने न रोका। घूमते फिरते शिवाजी रायगढ़ पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने राज्य की अवस्था देखी और उसको उसी सुप्रबन्ध में पाया, जिसमें कि वे उसे १० मास पूर्व छोड़ गये थे। शिवाजी के रायगढ़ पहुँचने की ख़बर अग्निशिखावत् प्रसरित हो गई। अपने सेनापति से परामर्श कर उन्होंने कहा, "बन्धुगण! प्रायः एक वर्ष व्यतीत हुआ कि जब हमने औरङ्गज़ेब से सन्धि की थी, परन्तु उसने अपने कपटाचार के कारण सन्धि तोड़ दी। अब हम पुनः अधर्मियों से युद्ध करेंगे।"

युद्ध प्रारम्भ हुआ, शिवाजी विजय पर विजय पाने लगे, दुर्ग के पश्चात् दुर्ग उनके हाथ में आने लगे। मोरोपन्त वीरता का परिचय देकर पूना के उत्तरस्थ दुर्गों को अधिकृत करने लगे। राजा जयसिंह २ जुलाई सन् १६६७ को मर चुके थे, अतएव अब

शिवाजी से मोरचा लेने वाला कोई न था। शिवाजी ने सन्धि द्वारा जो कुछ छोड़ा था उसे पुनः अपने अधिकार में कर लिया। यशवन्तसिंह और मोअज्ज़म एक वार फिर दक्षिण भेजे गये, परन्तु उनसे कुछ करते-धरते नहीं बना।

शिवाजी के निकल जाने से औरङ्गज़ेब के हृदय में असह्य धक्का लगा था। कदाचित् उसके जीवन में यह प्रथम ही घटना थी, कि उसने ऐसी मुँह की खाई। शेर कटहरे से निकल गया, अब वह क्या कर सकता था? अन्त में उसको एक प्रकार से हार माननी पड़ी। उसने शिवाजी के पास सनद भेजी, जिसमें उसने उनको 'स्वाधीन राजा' क़रार दिया था, और जूनार तथा अहमदनगर के सिवा उसने बरार में भी उनको एक जागीर प्रदान की। पूना, चाकन और सूपा की प्राचीन जागीरें तो उनके अधिकार में आ गईं, परन्तु सिंहगढ़ और पुरन्धर उनको न मिल सके थे। सन् १६६७-६९ तक मुग़लों को दक्षिणी सुलतानों से युद्ध करना पड़ा था, और शिवाजी की दक्षिण के मुगल सूबेदार से एक प्रकार की मत्री थी, अतएव उन्होंने उसको सहायता दी थी जिसके उपलक्ष्य में सन् १६६७ में गोलकुण्डा और बीजापुर से 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' लेने का अधिकार उनको दिलवा दिया गया। इसके सिवा उपर्युक्त दोनों हुकूमतों ने तीन तीन लाख रुपया वार्षिक भी देना स्वीकार किया, परन्तु सन् १६६९ में औरङ्गज़ेब ने अपने पुत्र को लिख भेजा कि तुम किसी न किसी प्रकार से शिवाजी को बन्दी कर लो। प्रतापराव गुज्जर को, जो

उस समय ससैन्य औरङ्गाबाद में थे, इस बात का पता लग गया। वे चुपचाप वहाँ से चलते बने और उन्होंने आकर सब हाल शिवाजी को सुनाया। इसके पश्चात् शिवाजी पुनः मुग़लों से भिड़ गये। मुग़लों ने भी पूरा ज़ोर बाँधा। इस युद्ध में सिंह-गढ़ के लेने में मरहटों ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया था।

---

## पंद्रहवाँ परिच्छेद

# तानाजी की महाकीर्त्ति

जिस समय शिवाजी ने राजा जयसिंह से संधि की थी, उस समय शिवाजी के हाथ से सिंहगढ़ का दुर्ग भी निकल गया था। शिवाजी जब दिल्ली से निकल आये थे, तब उन्होंने पुनः अनेक दुर्गों पर अधिकार कर लिया था, परन्तु सिंहगढ़ अभी तक उनके अधिकार में नहीं आया था। हम पीछे लिख आये हैं, कि औरङ्गज़ेब ने अपने पुत्र और यशवन्तसिंह को पुनः दक्षिण में भेजा था, परन्तु इन दोनों को अकर्मण्य जान कर उसने उदयभानु नामक एक सरदार को पीछे से रवाना किया। 'सिंहगढ़ विजय' में यह दिखलाया गया है, कि उदयभानु मेवाड़ का एक कुल-कलङ्क राजपूत था, जो राणा राजसिंह द्वारा निकाले जाने पर औरङ्गज़ेब के यहाँ चला गया था। औरङ्गज़ेब ऐसे मनुष्यों की टोह में सदा रहता था, अतएव उदयभानु को पाकर वह अति प्रसन्न हुआ था। औरङ्गज़ेब ने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ा कर उसको अपने दरबार में एक उच्च पद प्रदान किया था।

औरङ्गज़ेब कभी किसी का विश्वास नहीं करता था, और न वह किसी व्यक्ति विशेष की शक्ति को बढ़ने देता था,

अतएव इन दोनों कारणों से उसने उदयभानु को दक्षिण में भेजा था। औरङ्गज़ेब शिवाजी पर इतना खार खाये बैठा था, कि यदि शिवाजी उसको मिल जाते, तो ईश्वर जाने वह उनकी क्या दुर्गति करता। शिवाजी का दिल्ली से निकल जाना उसे इतना बुरा लगा, कि यदि कोई उसकी दाढ़ी भी उखाड़ लेता तो कदाचित् उसे इतना बुरा न लगता; परन्तु इस समय वह कर क्या सकता था। वह सोचता होगा कि मैं इतना कुटिल-नीति-विशारद होकर भी ऐसा धोखा खा गया। इससे भी बढ़ कर मेरी फ़ज़ीहत और बदनामी क्या हो सकती है? अतएव अब उसने शिवाजी पर पुनः कुटिल नीति का पाश डालना चाहा; परन्तु शिवाजी की बुद्धि के आगे उसकी दाल न गली और शिवाजी फिर उसके विश्वास में कभी न आये। औरंगज़ेब को मृत्युकाल तक इस बात का पश्चात्ताप रहा। उसने उदयभानु को बुलाया और कहा—"तुम दक्षिण में जाओ, और सिंहगढ़ के क़िले में जाकर रहो। सिंहगढ़ का क़िला शिवाजी को हाथ में लाने की कुञ्जी है। जब तक वह हमारे अधिकार में है, शिवाजी एक प्रकार से हमारे हाथ में है। सिंहगढ़ की रक्षा अच्छी तरह से करना, क्योंकि शिवाजी इसी के लेने का यत्न करेगा। इसके साथ ही तुम यशवन्तसिंह और मोअज्ज़म पर भी ख़ूब कड़ी नज़र रखना।"

उदयभानु सिंहगढ़ में आकर रहने लगा। सिंहगढ़ का हम कुछ वर्णन पीछे कर आये हैं, परन्तु प्रसंगवश यहाँ पर फिर कुछ लिखना उचित है। सिंहगढ़ सुन्दर प्राकृतिक स्थान में बना हुआ

है। चतुर्दिक उच्च पर्वत-श्रेणी खड़ी हैं। एक ओर सह्याद्रि अपने गगनस्पर्शी शिखरों द्वारा अपने गाम्भीर्य का परिचय दे रहा है। इसी के पूर्व में सिंहगढ़ का दुर्ग है। इसके उत्तर और दक्षिण में भी उच्चशृङ्ग हैं, जो इसको सहज ही में सुदृढ़ बनाते हैं। इन पहाड़ों पर चढ़ना अति कठिन है। आधे मील तक ऊपर चढ़ने पर छोटी दुर्गम पहाड़ियों को तै कर क़िले में पहुँचना होता है। दुरारोह पर्वतों से घिरा हुआ सिंहगढ़ त्रिभुजाकर बना हुआ है। इसके बीच में अनुमान से दो मील का मैदान है। प्राकृतिक कारणों से यह दुर्ग एक प्रकार से अभेद्य है। इस दुर्ग के चारों ओर मछली पकड़ने वाले कहार रहते थे। जब तक उदयभानु के क़दम-ए-शरीफ़ यहाँ पर नहीं आये थे, तब तक यह क़िला रायाजी के अधिकार में था। जब से उदयभानु यहाँ आगये तब से इसमें ख़ूब चौकसी रहने लगी। इसने दुर्ग की रक्षा के लिये उत्तम प्रबंध कर डाला। संरक्षकों को बुलाकर उसने यह आज्ञा दी, कि कोई बाहरी आदमी इस क़िले में न आने पावे, और विना मेरी आज्ञा के कोई बाहर भी न जाने पावे। उसने चारों ओर कड़े पहरे बिठला दिये। क़िले के भीतर जितने बुर्ज और बुर्जियाँ थीं, उनपर भी पहरेदार नियुक्त कर दिये गये। पहरेदारों के लिये जो नियम बनाये गये थे, वे इतने कड़े थे कि विचारों को निद्रादेवी से भेंट करना कठिन हा गया था। इतना प्रबन्ध कर चुकने पर भी वह रात्रि को स्वयं निरीक्षण करता था, और जिनको वह 'ड्यूटी' पर न पाता उनको बड़ा कठिन दण्ड देता था।

इधर शिवाजी को भी उदयभानु के आने का पता मिल गया। अब के दुर्ग के विजय का भार तानाजी ने स्वयं अपने सिर पर लिया। माघ मास के अन्त में १००० मावलियों को लेकर तानाजी सिंहगढ़ को विजय करने चले। इनके साथ में इनके भाई सूर्य्यजी और दूर के नाते के मामा शेलार भी थे। इन सबों ने वहाँ पहुँच कर रायाजी को अपनी ओर मिला लिया। पाँच-छै रोज़ तक भेद लेने के पश्चात् रात्रि में दुर्ग पर चढ़ने के लिये जगह निकाली गई। स्थान निर्दिष्ट हो जाने पर यह प्रश्न उठा, कि ऊपर किस प्रकार चढ़ा जाय, और सब से पहले ऊपर कौन चढ़े? वृद्ध शेलार ने इस काम का भार अपने ऊपर लिया, परन्तु तानाजी ने इस में आपत्ति की। तब तो वृद्ध कड़क उठा और कहने लगा 'तानाजी! आज मैं इस बात को दिखला दूँगा कि इस ८० वर्ष के वृद्ध शरीर में कितना बल है? जब यह वृद्ध कमन्द द्वारा सर-सर ऊपर पहुँच जावेगा, तब तुम्हें मालूम पड़ेगा कि वृद्ध कैसा है?' तानाजी ने उनको धीरे-धीरे बोलने को कहा, परन्तु बूढ़े मामा ने उस ओर कुछ ध्यान न देकर अपना बड़बड़ाना जारी रक्खा, और अन्त में उन्होंने कमन्द निकाल ही ली। तानाजी ने उनको रोक कर यह निश्चित् किया, कि येसाकरणेकर अपने ४८ मनुष्यों को लेकर संध्या होते द्रोणगिरि आ जावें। सूर्य्यजी कल्याण दरवाज़े की ओर भेजे गये और शेलार तथा तानाजी ने दुर्ग पर चढ़ना विचारा। आज सारा दिन तानाजी ने

अन्न-जल बिना बिताया था। जब शेलार ने यह जाना तो उसने कुछ खा लेने को कहा, परन्तु उन्होंने कहा कि 'आज जब तक दुर्ग हस्तगत न कर लूँगा, तब तक अन्न-जल नहीं करूँगा।' ऐसा कहकर वे अपने काम में लग गये।

भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओट हो गये। संध्या की कालिमा छा गई। अन्धकार ने समस्त संसार पर अपना पर्दा डाला। ऐसे ही समय में शेलार मामा ने कमन्द निकाली और ऊपर फेंकी। यथायोग्य स्थान पर कमन्द चिपट गई। शेलार और तानाजी आदि सब ऊपर चढ़ने के उद्योग में लगे। तानाजी अग्रसर हुए, और बात की बात में वे ऊपर जा पहुँचे। तानाजी के बाद एक-एक कर सब ऊपर चढ़ गये। रायाजी के प्रबन्ध से इस भावी दुर्घटना की ऊपर किसी को भी सम्भावना नहीं हुई थी। प्रायः १२ मावली वीर योद्धा दुर्ग की प्राचीर पर पहुँच गये। अब मेख ठोक कर ऊपर से दो रस्से और लटका दिये गये। पहरेदारों को कुछ शङ्का हुई तो वे उस ओर बढ़े। एक पहरेदार को उस ओर आता देख तानाजी ने समझा कि अब मामला बिड़गता है, परन्तु घोर अन्धकार के कारण वह पहरेदार तानाजी को न देख सका था। तानाजी ने कुछ न सोच कर तीर द्वारा उसे बिद्ध कर भूतलशायी किया और थोड़ी देर के लिए विघ्न की सम्भावना दूर हुई। इतने में लटकाये हुए रस्सों द्वारा ५० वीर और ऊपर चढ़ आये।

अब सब से पहले यह काम करना विचारा गया, कि किसी न

किसी प्रकार से जुझार बुर्ज पर अधिकार कर लिया जाय, और दुर्ग का द्वार खोल दिया जाय। इस काम के लिए थोड़े से वीर बुर्ज की ओर भेजे गये। चलते समय इन लोगों को समझा दिया गया, कि किसी प्रकार का शब्द न करें, क्योंकि ऐसा करने से विजय कठिन हो जायगी। बेचारे बुर्ज पर के लोग ऊँघ रहे थे। उनको क्या ख़बर थी कि उनका काल उनके सिरों पर नाच रहा है। ऐसी अवस्था में मावलियों ने उन पर आक्रमण किया। अचानक आक्रमित होने पर बुर्ज के सिपाही घबड़ाहट में पड़ गये। वे हक्के-बक्के से खड़े रह गये। तत्काल मावलियों ने उन की पूरी सफ़ाई कर दी। वहाँ एक तोप पड़ी थी। उसमें भी कील ठोक दी गई। दूसरा दल द्वार खोलने को भेजा गया था, उसने भी अपना काम पूरा किया। इतने में दुर्ग में खलबली मच गई। उदयभानु अपने मकान से निकल पड़ा, और दुर्ग-द्वार की ओर झपटा। दुर्ग के द्वार पर तानाजी डटे थे। वे सूर्य्यजी के इन्तज़ार में थे, परन्तु सूर्य्यजी के आने में विलम्ब हुआ।

अब दुर्ग में युद्ध होने लगा। मुसलमान सिपाही 'तोबा तोबा' कहते हुए इधर-उधर भागने लगे। विकट रण-ताण्डव होने लगा। तलवारों और तीरों की आवाज़ से दुर्ग कम्पायमान हो गया। भैरवनाद करता हुआ उदयभानु तानाजी पर टूट पड़ा। एक क्षण ही में लड़ाई ने गहरा रंग पकड़ा। दोनों ही एक दूसरे को गिराने की चेष्टा में संलग्न थे। एक ओर शिवाजी के सुहृद वीर और दूसरी ओर मेवाड़ का कुलकलङ्क अपनी-अपनी उग्र वीरता का

परिचय देने लगे। तानाजी थके हुए थे, परन्तु इतने पर भी वे सफ़ाई और फुर्ती से हाथ चला रहे थे। दोनों के मुखों से वीरोचित और उत्साहवर्द्धक वाक्य निकल रहे थे। थोड़ी ही देर के युद्ध में दोनों के शरीर व्रणों से परिपूरित हो गये। इतने में उदयभानु के खड्ग से तानाजी की ढाल फटगई। तब उन्होंने फुर्ती से बायें हाथ से कमर का पटुका खोल डाला और उसे लपेट कर एक नई ढाल तैयार करली,परन्तु पटुका से बचाव कब तक हो सकता था? ताना जी शिथिल होने लगे, और अन्त में उदयभानु के आघात से आहत होकर वे भूमि पर गिर पड़े। उदयभानु ने अपनी तलवार उनकी छाती में भोंक दी। हा! शिवाजी के चिरकालीन मित्र इस संसार से चल बसे। एक महान् आत्मा ने इस नश्वर देह को त्याग कर वीर कीर्ति के साथ स्वर्गलोक को प्रस्थान किया।

तत्काल ही तानाजी की मृत्यु का समाचार दुर्ग भर में फैल गया। शेलार दूसरी ओर युद्ध कर रहे थे। बात की सत्यता जानने के लिये वे इधर झपटे। आते ही उन्होंने देखा कि उदयभानु जोर-शोर से तलवार चला रहा है, और तानाजी के लिये अपशब्द भी कहता जा रहा है। शेलार का धैर्य्य जाता रहा। क्रोध के मारे उनकी आखों से आग बरसने लगी। उन्होंने हठात् उदयभानु के ऊपर आक्रमण किया। अस्सी वर्ष के बुड्ढे को सामने देख कर उदयभानु दंग रह गया। शेलार के घोर आक्रमण से वह व्यथित हो गया और थोड़ी ही देर में वृद्ध की तलवार ने उसका काम तमाम कर दिया। तानाजी की मृत्यु के कारण

मावलियों का धैर्य्य छूटने लगा। उदयभानु के सैनिकों ने ज़ोर पकड़ा। मावलीगण हटने लगे। सूर्य्यजी ने देखा कि वे कमन्द रस्सों की ओर बढ़ रहे हैं। यह देख कर उन्होंने कमन्द तथा रस्सों को काट दिया और कहा 'कापुरुषो! जाओ, अपने प्राणों को कायरों की तरह गँवा दो। तानाजी को खोकर और अपने मुखों में कारिख पोत कर शिवाजी के सामने जाओ और साथ में यह भी देखते जाओ कि तानाजी की बोटी बोटी कैसे काटी जाती है, धिक्कार है तुम सबको'। सूर्य्यजी के इन मर्मवेधी शब्दों ने अपूर्व काम किया। महाराष्ट्र योद्धा ठहर गये। अब उन्होंने पीठ दिखाने की अपेक्षा समरक्षेत्र में प्राण देना ही उचित समझा, और वे पुनः उदयभानु के सैनिकों से भिड़ गये। एक वार युद्ध ने फिर रौद्ररूप धारण किया। उधर शेलार मामा ने उदय-भानु को यमपुरी का रास्ता दिखला दिया था। उसकी मृत्यु से दुर्ग में हाहाकार मच गया। इतने में एक और ख़बर फैली कि एक नवीन सुसज्जित महाराष्ट्रीय सेना चढ़ी चली आरही है। थोड़ी देर पूर्व जो महाराष्ट्र वीरों की अवस्था हो गई थी, ठीक वही हालत अब दुर्गस्थ सैनिकों की हो गई। वे चारों ओर भागने लगे। जिसने जिधर को मौक़ा देखा वह उधर ही को भाग निकला। अब महाराष्ट्र वीरों ने दुर्ग में प्रलयकाल उपस्थित किया। हताश दुर्गस्थ सेना के पैर लटपटाने लगे। जब सूर्य्यजी ने देखा, कि पूर्ण विजय प्राप्त हो गई, तो उन्होंने शिवाजी की दुहाई फिरवा दी, और घोषित किया कि 'जो हथियार रख देगा

वह मारा नहीं जायगा'। घोषणा के सुनते ही हथियार रक्खे जाने लगे। सबों ने सूर्य्यजी को झुक कर प्रणाम किया।

लड़ाई बन्द हुई। सूर्य्य जी ने सबको अभयदान देकर अपने-अपने स्थान पर जाने को कहा। उधर शिवाजी भी रायगढ़ को छोड़ कर सिंहगढ़ की ओर चले। सिंहगढ़ के निकट आने पर उनको ख़बर मिली कि क़िला फ़तह हो गया है, परन्तु ख़बर देने वाले ने तानाजी का कुछ हाल न कहा। विजय-वार्त्ता सुन कर शिवाजी ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया। प्रवेश करने पर वीर मावलियों ने उनको प्रणाम किया, परन्तु किसी प्रकार का हर्ष न प्रकट किया। जो उनको देखता वही गर्दन झुका लेता। शिवाजी ने सब ही ओर यही रङ्ग देखा, तब तो उनके हृदय में संदेह उत्पन्न हुआ। आगे बढ़े तो उनको शेलार मामा मिले। उनके सामने एक शव रक्खा हुआ था, जिसके ऊपर एक ज़री का डुपट्टा पड़ा था। शिवाजी को देखते ही शेलार रोने लगे। इस दृश्य के देखते ही शिवाजी का हृदय विदीर्ण हो गया। उनके मुख से कोई शब्द भी नहीं निकला। तब तो शेलार ने चिल्ला कर कहा "महाराज! हाय! महाराज! हाय मेरा ताना! आपका प्राणप्यारा ताना! हमारे हाथों से छीन लिया गया। हाय महाराज अब मैं क्या करूँ!" इन हृदय-विदारक शब्दों को सुनते ही शिवाजी एक दम काँप उठे। उन्होंने अपने को बहुत ही रोका, पर करुणा-समुद्र की लहरों को वे न रोक सके। एक सामान्य बालक की तरह वे फूट-फूट कर रोने लगे। कभी तो वे शेलार

मामा से लिपट जाते, और कभी तानाजी के शव से चिपट कर रोते। इस हृदय-द्रावक दृश्य को देख कर उस समय ऐसा कौन था, जो नौ-नौ आँसू न रोया हो। सब ही रोते थे। शिवाजी का तो अजब हाल था। बेचारे शेलार अपना रोना भूल गये। वे शिवाजी को समझाने लगे।

कुछ देर के बाद शिवाजी ने शान्ति ग्रहण की, और दुपट्टा उठाकर वे तानाजी का मुखावलोकन करने लगे। तानाजी की बड़ी-बड़ी आखें खुली हुई थीं। मुख पर एक प्रकार का सौन्दर्य्य दिखलाई पड़ता था। शिवाजी कुछ देर तक शव की ओर टकटकी लगाये देखते रहे, मानो उनको उनके मरने में अभी सन्देह था। थोड़ी देर के बाद उन्होंने शव को ढक दिया और आंसू पोंछते-पोंछते वे शेलार मामा से कहने लगे "गढ़ आया, परन्तु सिंह गया। भवानी तेरी इच्छा," "सूर्य्यजी! तुम यही समझो कि शिवाजी मर गया, और तानाजी अभी जीवित है। जानकी माता से भी यही कहना कि जैसे मेरा पुत्र शम्भाजी है उसी प्रकार रायवा* भी होगा।"

दुर्ग विजय कर शिवाजी ने उदयभानु की स्त्रियों को आदर-पूर्वक दिल्ली भिजवा दिया। इसके पश्चात् उन्होंने गढ़ को ठीक कराने की आज्ञा दी। इस समय बालाजी आबजी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, कि सब की ऐसी इच्छा है, कि जिस स्थान पर

---

* जानकीजी तानाजी की माता का नाम था और रायवा उनके पुत्र का नाम था।

तानाजी ने अपने प्राण त्यागे हैं, उस स्थान पर उनकी समाधि बनवा दी जाय। इस बात को सुनते ही शिवाजी ने कहा कि 'इस चूने पत्थर की समाधि से तानाजी का क्या होगा? उनकी सच्ची समाधि तो मेरे हृदय में बनी है। अच्छा तुम्हारी मर्ज़ी।'

इस प्रकार तानाजी को सवदा के लिए खोकर शिवाजी ने फाल्गुन कृष्णा नवमी सन् १६७० ई० को पुनः सिंहगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया।*

---

*इस घटना का सार, 'सिंहगढ़ विजय' नामक पुस्तक से लिया गया है। जो महाशय इसका पूरा विवरण पढ़ना चाहें वे उपर्युक्त पुस्तक को अभ्युदय प्रेस से मँगवा कर पढ़ें।

## सोलहवाँ परिच्छेद

# राज्याभिषेक और अन्त

सिंहगढ़ विजय के पश्चात् मरहटाओं ने परम प्रचण्ड रूप धारण किया। पुरन्धर, माहुली, कर्नाला, लोहगढ़ और जूनार आदि गढ़ शिवाजी के अधिकार में आ गये। ऐसे ही समय पर भूषण ने कहा है:—

> दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा शिवाजी गाजे।
> ठग्ग पर ठग्ग नाचे रुण्ड-मुण्ड फरके॥

इसी समय में सीदियों पर पुनः आक्रमण किया गया। उनका जञ्जीरा नामक दुर्ग घेर लिया, परन्तु उनकी नई-शक्ति के प्राबल्य के कारण दुर्ग प्राप्त करने में सफलता न हुई। सूरत पर एक बार पुनः आक्रमण किया गया, और इस बार भी शिवाजी को वहाँ से बहुत धन प्राप्त हुआ। जिस समय शिवाजी सूरत को लूट कर लौट रहे थे, रास्ते में मुग़ल-सेना ने उनको घेर लिया। शिवाजी के पास सिपाही भी थोड़े ही थे, मुग़ल-सेना उनसे कहीं अधिक संख्या में थी। घोर युद्ध होने लगा, परन्तु मरहटाओं ने उस दिन वह वीरता दिखलाई कि मुग़लों के छक्के छूट गये। मुग़ल-सेना भाग खड़ी हुई, और मरहटों ने उसका पीछा किया, तथा थोड़ी दूर तक उसको खदेड़ा भी। जो धन वे सूरत से लूट

लाये थे उन्होंने उसको रायगढ़ पहुंचा दिया। प्रतापराव गुज्जर ने ख़ानदेश पर चढ़ाई कर दी, और बरार तक धावे मारे। इन धावों में उन्होंने 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' ख़ूब वसूल की। यह प्रथम अवसर था, जब कि मुग़ल साम्राज्य की प्रजा ने दूसरे को कर दिया। पेशवा मोरोपन्त ने सन् १६७१ में बागलान के सालहर नामक दुर्ग को अधिकृत कर लिया।

बागलान प्रदेश को एक बार औरङ्गज़ेब ने स्वयं जीता था, अतएव यह प्रदेश मुग़ल राज्य के अधिकार में था। मोरोपन्त ने यहाँ के दुर्ग को छीन लिया था, इसलिये मुग़लों को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने दुर्ग पर पुनरधिकार प्राप्त करने के लिये बड़े ज़ोर-शोर से चढ़ाई की। दुर्ग के भीतर मोरोपन्त डटे थे, और जब मुग़लों ने उनको घेर लिया, तब प्रतापराव ने मुग़लों के पृष्ठ भाग पर आक्रमण किया। बेचारों पर दो ओर से मार पड़ने लगी। मार असह्य हुई और वे लोग भाग निकले। मुग़ल सेना ने कभी ऐसी हार मरहटाओं से नहीं खाई थी। सन् १६७३ में पन्हाल दुर्ग पुनः ले लिया गया, और अन्नाजी दत्तू ने हुबली को लूट लिया। बिदनौर के राजा ने कर देना स्वीकार कर लिया। अब इस समय शिवाजी का सामना करने वाला कोई न था। बीजापुर का गर्व खर्व हो गया था। गोलकुण्डा ने पाँच लाख रुपये वार्षिक देना स्वीकार कर लिया था, और बीजापुर ने भी तीन लाख रुपये कर-स्वरूप देकर शिवाजी की प्रभुता को बढ़ा दिया था। औरङ्गज़ेब ने मन ही मन शिवाजी से हार

मान ली थी । सन् १६७४ में बीजापुर ने एक वार फिर शिवाजी पर चढ़ाई की, परन्तु प्रतापराव ने उसकी सेना को मार भगाया । इस प्रकार से इन चार वर्षों में शिवाजी ने बहुत कुछ भूमि अपने अधिकार में कर ली। उत्तर में सूरत तक, दक्षिण में बिदनौर और हुबली तक एवं पूरब में बरार, बीजापुर और गोलकुण्डा तक उनका राज्य प्रसरित हो गया था। मुग़लप्रान्त, जो ताप्ती के दक्षिण में थे, शिवाजी को 'सरदेशमुखी' देने लगे थे।

तीन बादशाहतों को पछाड़ कर शिवाजी ने स्वतन्त्र हिन्दू-राज्य स्थापित किया। हम पीछे लिख आये हैं, कि बीजापुर और गोलकुण्डा की बादशाहतों ने कर देना स्वीकार कर लिया था। औरङ्गज़ेब ने भी शिवाजी को 'राजा' की सनद दे दी थी। ऐसी अवस्था में उन्होंने स्वतन्त्र छत्र धारण कर हिन्दू-राज्य स्थापन करना उचित समझा। अतएव सन् १६७४ के आनन्द नामक संवत् की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी बृहस्पतिवार को रायगढ़ में शिवाजी का राजतिलक हुआ। आज हिन्दुओं की इच्छा पूर्ण हुई। शताब्दियों की परतन्त्रता दूर हुई। राजतिलक होने पर उनका नाम 'छत्रपति महाराज शिवाजी भोंसले' हुआ। शिवाजी के सिंहासनारोहण के दिन से महाराष्ट्रदेश में एक नवीन जीवन का संचार हुआ, और उसी दिन से 'शिवशक' नाम का एक शाका चलाया गया, जो अब तक कोल्हापुर के राजघराने में चला आता है।

राज्याभिषेक के समय काशी से गाग भट्ट बुलाये गये थे। जिस समय शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ, उसी समय उनका यज्ञोपवीत संस्कार भी हुआ था। पहले उनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ था; अतएव स्टील आदि का मत है, कि शिवाजी क्षत्रिय नहीं थे, किन्तु शूद्र थे। दूसरों ने भी लिखा है, कि "शिवाजी शूद्र थे। परन्तु जब उनका राजतिलक हुआ तब इस बात की आवश्यकता समझी गई, कि वे क्षत्रिय सिद्ध किये जायँ, क्योंकि भारत में क्षत्रियों के सिवा कोई दूसरा राजा नहीं होता आया है। अतएव जब वे गद्दी पर बैठे, तो पण्डितों ने उनको क्षत्रिय बना दिया।" परन्तु ऐसा मत भ्रममूलक है। शिवाजी क्षत्रिय थे, इस में कुछ सन्देह नहीं है। लुकजी यादवराव ने, जो प्राचीन देवगिरि के यादवों के वंशज थे, अपनी कन्या का विवाह शाहजी के साथ किया था। यदि शाहजी शूद्र होते, तो यह विवाह-सम्बन्ध कदापि न होता। दूसरे जिस समय मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने दक्षिण पर चढ़ाई की थी, उस समय शिवाजी ने उनसे सन्धि कर ली थी। चिटनीस आदि इतिहास-लेखक लिखते हैं, कि जयसिंह ने शिवाजी के साथ खान-पान का व्यवहार भी किया था, और साथ ही उनको क्षत्रिय माना था। इसके सिवा महाकवि भूषण ने जो एक पद लिखा है उससे बहुत कुछ सन्देह दूर होता है। वह पद यह है "लियो विरद सीसौदिया, दियो ईस को सीस।" इससे मालूम होता है, कि शिवाजी का कुल उदयपुर के सीसौदिया वंश की

एक शाखा है। शिवाजी के क्षत्रिय होने के तो कई प्रमाण मिलते हैं, परन्तु उनके शूद्र होने के प्रमाण तनक भी विश्वस्त नहीं हैं।

अभिषेक के समय भिन्न-भिन्न राज्यों से दूत आये थे। सूरत के अङ्गरेज़ी प्रेसीडेण्ट ने भी अपना एक अङ्गरेज़ एलची भेजा था। सभा में पहुँचने पर उस दूत ने शिवाजी और शम्भाजी को भेटें दीं। इन भेटों से शिवाजी बहुत प्रसन्न हुए। भेंट देने के पश्चात् उस दूत ने कहा, कि हमारे प्रेसीडेण्ट ने मुझको आपके दरबार से इस बात की अनुमति प्राप्त करने के लिए भेजा है कि जिन शर्तों पर अङ्गरेज़ ईरान में व्यापार करते हैं उन्हीं शर्तों पर वे यहाँ भी व्यापार करसकें, और आपका सिक्का हमारे राज्य में और हमारा सिक्का आपके राज्य में चलाया जा सके। इसके सिवा जो जहाज़ या माल कोंकण के सामुद्रिक किनारे पर लुट जाय, या तूफ़ान से नष्ट हो जाय, उससे होने वाली हानि राज्य द्वारा पूरी कर दी जाय। शिवाजी ने इन शर्तों को नामंज़ूर किया, और उनसे इस प्रकार की सन्धि की गई, जिसके द्वारा अङ्गरेज़ों को शिवाजी के राज्य में व्यापार करने की आज्ञा मिल गई। अँगरेज़ों ने २॥) सैकड़ा महसूल देना मंज़ूर किया, और इसके साथ ही शिवाजी के सिक्कों को भी उपयोग में लाना स्वीकार कर लिया।

इस दूत ने शिवाजी के दरबार का कुछ वर्णन किया है। उसने महाराज शिवाजी को एक विशाल और देदीप्यमान राज-सिंहासन पर बैठा देखा था। उनके वीर सरदार बहुमूल्य वस्त्रा-भूषण धारण किये उनके दोनों ओर खड़े हुए थे। सिंहासन के

नीचे शम्भाजी, मोरोपन्त और नारायण पण्डित बैठे हुए थे। शेष सब सरदार विनम्र भाव से यथास्थान खड़े थे। शिवाजी के सिंहासन के दाहिनी ओर सुवर्ण की दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ लटक रही थीं, और बाईं ओर एक सुवर्ण की तुला भाले पर टँगी हुई थी।

सिंहासनासीन होने के पश्चात् शिवाजी पुनः राज्यवृद्धि के यत्न में लगे। उन्होंने देखा, कि दक्षिण के यवन-राज्य नितान्त शिथिल हो गये हैं, और औरङ्गज़ेब उनको थोड़े ही दिनों में ग्रस लेगा। इसी समय मुग़लों ने गोलकुण्डा पर चढ़ाई की। गोलकुण्डा ने शिवाजी से सहायता मांगी। सहायता देने के लिये हम्मीरराव रायगढ़ से भेजे गये। इस वीर ने गोलकुण्डा पहुँच कर मुग़ल-सेना को हटा दिया, और थोड़े दिनों के लिये गोलकुण्डा को मुग़लों के पंजे से बचा दिया। कुछ दिनों पश्चात् स्वयं शिवाजी ने गोलकुण्डा की सहायता के लिये तञ्जौर पर चढ़ाई की और बिलौर तथा जिञ्जी को जीतते हुए वे मैसूर तक पहुँच गये। मुग़लों ने गोलकुण्डा छोड़ कर बीजापुर पर धावा कर दिया। बीजापुर इतना कमज़ोर हो गया था, कि उसको अपनी रक्षा करनी कठिन दिखलाई देने लगी। शिवाजी से सहायता माँगने के सिवा उसको और कोई उपाय न था। शिवाजी से उसने सहायता माँगी और उन्होंने उसको सहायता दी। इस वार शिवाजी की सेना ने मुग़लों की धज्जियाँ उड़ा दीं। सूरत से लेकर बुरहानपुर तक फैली हुई मुग़ल सेना में हा-हाकार

मच गया। अन्त में मुग़लों को बीजापुर छोड़ देना पड़ा। यह घटना सन् १६७६ की है। इसके कुछ ही काल पूर्व माता जीजीबाई का स्वर्गवास होगया था।

सन् १६८० ई० में शिवाजीके घुटनों में असह्य पीड़ा उठी। पीड़ा इतनी बढ़ी कि उनके घुटने फूल गये। घुटने फूलने के साथ ही उनको ज्वर भी आगया। यह ज्वर फिर न उतरा। इसी कालज्वर में ५ अप्रैल को महाराज का स्वर्गवास हुआ। इस समय इनकी अवस्था ५३ वर्ष की थी। इनके दो पुत्र थे। जिनमें ज्येष्ठ का नाम शम्भाजी और कनिष्ठ का राजाराम था।

मृत्यु के समय इन्होंने चार सौ मील लम्बा-चौड़ा राज्य छोड़ा था। कर्नाटक का दक्षिणी अर्द्ध भाग भी इनके अधिकार में आगया था। तञ्जौर भी इनके राज्य में सम्मिलित था। नर्मदा से कोकण तक इनका राज्य फैल गया था। इस समय इनके पास तीस हज़ार सवार और चालीस हज़ार पैदल सिपाही थे।

## सत्रहवाँ परिच्छेद

# महाराज की शक्ति

हम प्रारम्भिक परिच्छेद में लिख आये हैं, कि महाराज शिवाजी ने छोटे-छोटे तृण बटोर कर एक मोटा रस्सा तैयार कर दिया। महाराष्ट्र-राज्य-स्थापन एक व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं हुआ था। मरहटाओं में स्वतन्त्रता का बीज चिरकाल से मौजूद था। महाराज ने उसी बीज से एक वृक्ष पैदा कर दिया। इस वृक्ष के बढ़ाने में उनको निम्नलिखित व्यक्तियों से सहायता मिली थी, अतएव इन सहायक पुरुषों का भी उल्लेख आवश्यक है। इस राज्यरूपी वृक्ष के बढ़ाने के लिए प्रथम शिक्षा अथवा सहायता जीजीबाई की थी। बाल्यावस्था ही में जीजीबाई ने महाराज को हिन्दू-राज्य-स्थापन करने के लिए उपदेश दिया था, और उसी उपदेश को लेकर छत्रपति कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। अवतीर्णावस्था में दादा कोणदेव ने अतुल सहायता दी। इन दोनों की सहायता और शिक्षा का वर्णन हम पीछे कर आये हैं।

शिवाजी को आजन्म प्रोत्साहन देनेवाले समर्थ गुरु श्री रामदासजी थे। जिस समय महाराज शिवाजी ने कार्य्यक्षेत्र में पग रक्खा था, उसी समय रामदास स्वामी ने उनसे

कहा था—"जितने तीर्थ-क्षेत्र थे वे सब नष्ट होगए हैं, ब्राह्मणों के रहने के सब स्थान अपवित्र कर दिये गये हैं, सारी पृथ्वी पर युद्ध होने के कारण धर्म का नाश होगया है, प्रजावर्ग के सुख-सम्मान का लोप होगया है, यवन उनसे खोटा बर्ताव कर रहे हैं, और उन्हें मनमानी यन्त्रणा दे रहे हैं; इसलिए यदि तुम इस दुर्दशा से इस पवित्र भूमि को उबारा चाहते हो, तो तुम को निम्नोक्त बातों का साधन करना चाहिए। सबसे पहली बात यह है, कि धर्म की रक्षा के लिए जीवन को न्यौछावर कर सब मरहटाओं को एक मत कर अपने धर्म को फैलाओ। परस्पर एका बाँधो और इस प्रकार से वैरियों को परास्त करने का दृढ़ संकल्प करो। दृढ़ता और अध्यवसाय के साथ शत्रुओं पर चारों ओर से आ टूटो।"

शिवाजी की बालकपन ही से हिन्दू धर्म में प्रगाढ़ रुचि थी। धर्म के ऊपर उनका अटल विश्वास था। धार्मिक विश्वासों में राजनैतिक मंत्र फूँका गया था। धर्म को लिए हुए राज्य-स्थापन की शिक्षा उनको मिली थी, क्योंकि शिक्षकों ने इस बात की परमावश्यकता समझी, कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ विना धर्म को साथ लिए हुए राज्य-स्थापन करना नितान्त असाध्य है। अतएव उन्होंने एक प्रकार के राजनैतिक धर्म को जन्म दिया, और इसी धर्म में शिवाजी दीक्षित हुए थे।

राजनैतिक धर्म क्या था? पाठकगण इस के समझने के लिए उत्सुक होंगे, अतएव इसके विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। इस धर्म की मूल 'भक्ति' में थी। शिक्षकों ने इस 'भक्ति' को

एक नवीन धारा में बहाया। जगदीश्वर में भक्ति रहते हुए उन्होंने सर्वसाधारण में 'भक्ति' का स्रोत बहा दिया। यहाँ इतना कहना अनावश्यक नहीं होगा, कि उस समय के शिक्षक प्रायः शूद्र-कुल-दीपक थे, अतएव इन लोगों द्वारा नीच वर्णों में भक्ति और प्रेम-भाव खूब ही फैला। उच्च वर्ण वाले भी इनसे कुछ असन्तुष्ट न थे। उन्होंने भी इनको सहारा दिया, अतएव थोड़े ही दिनों में एक नवीन जातीयता झलकने लगी, जो थोड़े ही दिनों में पुष्ट हो गई। मुसलमानों ने अपने अत्याचार से समस्त हिन्दुओं को दुःखित कर दिया था। ये लोग भी उस अत्याचार से पीड़ित हुए थे, अतएव शिक्षकों ने उसमें एक नवीन मन्त्र फूँका। यह मन्त्र वही था, जिसकी व्याख्या स्वामी रामदास ने शिवाजी से की थी। इस प्रकार मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित शिक्षकों ने 'प्रेम-धर्म' को राजनैतिकधर्म से मिलाकर एक प्रकार के नवीन धर्म की शिक्षा का प्रचार किया।

शिवाजी उच्चकुलोद्भव थे, परन्तु इसी शिक्षा के कारण वे नीचातिनीच हिन्दुओं से भी घृणा नहीं करते थे, अतएव नीच हिन्दू भी उनको अपना समझते थे। इस प्रकार परस्पर अति शीघ्र सुहृद्भाव स्थापित हो गया। प्रेम के साथ-ही-साथ चिरकाल-स्थित स्वातन्त्र्यबीज वर्द्धित होने लगा, और शीघ्र ही उसने सुन्दर वृक्ष का स्वरूप धारण कर लिया। प्रेम-शिक्षा-दीक्षित शिवाजी ने ऐसे मित्र बना लिये, जिन्होंने आजन्म उनका साथ न छोड़ा। नैपोलियन के सहायक एवं मित्र बहुत-से थे, परन्तु वे सब

स्वामिभक्त नहीं थे। उनका मित्र 'मुरा' उनको कठिन समय पर धोखा दे गया था। शिवाजी के पास ऐसा एक भी 'मुरा' न था। जगद्विजयी सिकन्दर को भी अपने मित्रों से भय बना रहता था, परन्तु शिवाजी को इस बात का भय कदापि न था। प्रसिद्ध जूलियस सीज़र, जिनका ब्रूटस् हार्दिक मित्र था, अपने उसी मित्र के हाथ से मारा गया, परन्तु शिवाजी को ऐसी मृत्यु का कदापि भय न था। उपर्युक्त वीरों के हृदयों में केवल राजनैतिक विषयों का स्रोत बहता था। राज्य बढ़ाने में मतलब गांठना उनका सबसे बड़ा काम था, अतएव उनके मित्रों में एक अन्य प्रकार का प्रेम था, जो राजनैतिक कारणों से अति शीघ्र टूट जाता था। परन्तु यहाँ यह बात न थी। राज्य-वृद्धि के साथ-ही-साथ प्राचीन 'प्रेम' भी बढ़ता था। उसी प्रेम की शिक्षा के कारण मैत्रीभाव का टूटना असम्भव था।

महाराज शिवाजी अपनी शक्ति का उपयोग करने में सिद्धहस्त थे। जिस समय शिवाजी शत्रु-दल पर विजय पाते थे, उस समय वे शत्रु-दल के अनेक योद्धाओं को अपने दल में ले लेते थे, और जो योद्धा कुछ दिनों पहले शिवाजी को यमपुर पहुँचाने के लिए भरसक प्रयत्न करते थे, वे ही शिवाजी के लिए सहर्ष प्राण देते थे। इतिहास में बड़े-बड़े शूरवीर और राजनीति-विशारद योद्धा हुए हैं, जिनको इतिहास ने शिवाजी से कहीं उच्च पद-प्रदान किया है, परन्तु कदाचित् वे इस अपूर्व शक्ति से वञ्चित थे। शत्रु-दल के वीरों पर विश्वास करना नीति-विरुद्ध है, इसका शिवाजी ने

अपनी नीति द्वारा पूर्ण रूप से खण्डन किया है। उन्होंने दिखला दिया है, कि मनुष्य मनुष्य के हृदय को क्यों कर जीत सकता है। बाजीप्रभु देशपाँड़े शिवाजी का शत्रु था, परन्तु जब वह शिवाजी की ओर हो गया, तब उसी ने महाराष्ट्रीय युद्ध में महाराष्ट्र-केसरी की रक्षा की थी। इस प्रकार का एक उदाहरण नहीं, किन्तु शतशः उदाहरण मिलते हैं। अगाध शत्रु को गहरा मित्र बनाना शिवाजी के बाँए हाथ का खेल था।

शिवाजी ने जिस समय राष्ट्र-स्थापन आरम्भ किया था, उस समय उनकी शक्ति तीन मित्रों में स्थित थी, जिनके नाम हम पीछे दे आये हैं। प्रारम्भिक काल में इन वीरों ने वीर मावलियों को अपनाया। भोले-भाले मावली शिवाजी पर मुग्ध हो गये। वे उनको सहज ही अपना नेता समझने लगे। यहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है, कि महाराज ने अपना कार्य मावली वीरों से प्रारम्भ किया था। इनमें उन्होंने कुछ अपूर्व गुण देखे थे। शिवाजी की सेना में इनका वैसा ही मान था, जैसा कि आजकल ब्रिटिश सेना में 'हाईलैण्डर्स' और रूसी सेना में 'क़ज्ज़ाकों' का मान है।

मावलियों को अपनाकर शिवाजी महाराज ने उच्च घरानों को अपनी ओर किया। इन घरानों से उनको अनेक वीर मिले, जिन में प्रतापराव गुज्जर, हम्मीरराव, शीदीजी, निम्बालकर और शम्भाजी मोरे शिवाजी के सहायकों में अग्रसर रहे। रूपजी भोंसले और नेमाजी सिन्धी के द्वारा उच्च वंशों ने शिवाजी का साथ दिया था। शिवाजी जितनी उन्नति करते जाते थे, उतने

ही सहायक उनको प्राप्त होते जाते थे। मुसलमान भी उनके चरित्र पर मुग्ध हो गये थे। उन्होंने मुसलमानों को दबाकर या धमका कर अपनी ओर नहीं किया था। वे लोग स्वयं उनकी सेना में आकर सम्मिलित होते थे। उनकी नौ-शक्ति का एडमिरल 'दरयासुरंग' था। इतना ही नहीं, किन्तु जिस समय बीजापुर-नव्वाब ने अपनी कुछ सेना को निकाल दिया था, शिवाजी ने उस सेना के कुछ भाग को अपने यहाँ रख लिया था। रघुबल्लाल मुसलमानी सेना के सेनापति बनाये गये थे। इस प्रकार हम देखते हैं, कि शिवाजी में कुछ विचित्र शक्ति थी।

शिवाजी के राज्य-प्रबन्ध के कितने ही साधक स्तम्भ थे। साधकों के दो वृहत् विभाग थे। प्रथम वह जिसका सम्बन्ध केवल युद्ध से रहता था, और द्वितीय वह जो युद्ध में भाग लेते हुए भी अधिकतर राज्य-संचालन में योग देता था। इन स्तम्भों की संख्या प्रायः पचास से ऊपर थी। इन पचासों में से कुछ पुरुष-पुङ्गवों का उल्लेख कर देना हम आवश्यक समझते हैं। मोरोपन्त का नाम इस गणना के आरम्भ में आता है। यह अपनी योग्यता से पेशवा पद पर पहुँच गये थे। इनमें अनेक गुण थे। राज्य-संचालन के सिवा यह युद्ध-विद्या-विशारद भी थे। व्यूह-रचना में तो यह अपने समय के द्रोणाचार्य्य थे। दुर्गनिर्माण कराने में भी आप सिद्धहस्त थे। युद्ध-विद्या की कुशलता का परिचय आपने उत्तरी कोकण

और बागलान की विजयों में दिया था। शासनादि कार्य्यों में मोरोपन्त एक प्रकार से शिवाजी के मंत्री थे। पन्तजी के पश्चात् आवाजी स्वर्णदेव का नाम आता है। पन्त के गुण इनमें भी उपस्थित थे। कल्याण-विजय का तिलक इन्हीं के माथे पर लगाया गया था। पहले यह शिवाजी के यहाँ 'मजूमदार' हुए।

अन्नाजी दत्तू ने अपनी वीरता और रणकुशलता का परिचय 'पन्हाल' और 'रांगना' के विजय करने में दिया था। दक्षिणी कोकण का अधिकार इनके हाथ में दिया गया था। जिस समय शिवाजी दिल्ली को गये थे, उस समय यह उनकी सेना के सेनापति थे। प्रतापराव गुज्जर भी अनुपम वीर थे। मुग़लों के आक्रमण के समय इन्होंने अपनी उत्कृष्ट सामरिक कुशलता का परिचय दिया था। बीजापुर की सेना इनके नाम से काँपती थी। एक वार इस वीर ने बीजापुर की सेना को परास्त किया, और थोड़ी दूर तक उसको खदेड़ा भी। शिवाजी ने इस बात पर अप्रसन्नता प्रकट की, और कहा—"तुमको चाहिये था, कि तुम उसका बहुत दूर तक पोछा करते। मालूम पड़ता है, कि तुम में सेनापतित्व की योग्यता नहीं है।" गुज्जर के हृदय में यह वाक्य वाण की तरह लगे। यह चाहते तो उस समय शिवाजी के शत्रु बन सकते थे, 'मुरा' बन कर शिवाजी का सर्वनाश करने को उद्यत हो जाते, परन्तु नहीं, इस वीर ने शिवाजी ही के लिये प्राण गँवाना उचित समझा। दूसरी वार शत्रु-दल पर उन्होंने पुनः घोर आक्रमण

किया। प्रतापराव प्रचण्ड वेग से अरि-सैन्य-समूह में घुस गये, जिससे विपक्षियों के पैर उखड़ गये और वे भाग निकले, परन्तु प्रतापराव ने अपना प्रायश्चित्त वहीं किया। शत्रु-सैन्य में घिर कर वे मारे गये। जिस समय शिवाजी ने यह समाचार सुना, उनके आँसू निकल आये थे, और उन्होंने अपने अन्त समय तक प्रतापराव की मृत्यु के लिये परिताप किया था।

तानाजी मूलसरे के विषय में इतना ही लिखना यथेष्ट होगा, कि वे शिवाजी के दाहिने हाथ थे। तानाजी की विना सलाह के महाराज कुछ भी नहीं करते थे। उनके ऊपर उनका कितना प्रेम था, सो तानाजी की मृत्यु के समय के महाराज के मुख से निकले हुए शब्दों से ज्ञात हो सकता है। ऐसे वीरों को प्राप्त कर 'होते शिवाजी न समर्थ कैसे'। इनमें से कोई भी ऐसा न था, जो अपने कर्त्तव्य से कभी विमुख हुआ हो। इस कर्त्तव्य-परायणता का पता उस समय लगता है, जिस समय महाराज दिल्ली में अचानक बन्दी हो गये थे। जब शिवाजी दिल्ली से लौटे हैं, तब उन्होंने किसी विभाग में कुछ गड़बड़ी नहीं पाई। महाराज को ऐसा ज्ञात हुआ, कि उनकी अनुपस्थिति में वैसा ही काम होता रहा, जैसा कि उनकी उपस्थिति में होता था। यह क्या बात थी ? बात यह थी कि इन लोगों ने वह शिक्षा प्राप्त की थी, जिससे यह स्वतन्त्रता से काम चला सकें। इस बात का प्रमाण हमको उस समय मिलता है, जिस समय औरङ्गजेब ने शम्भाजी को बन्दी कर मरवा डाला था, परन्तु इससे महाराष्ट्र-राज्य को किञ्चित् भी धक्का न लगा था।

औरङ्गज़ेब स्वयं कई वर्षों तक दक्षिण में रहा, और बीजापुर तथा गोलकुण्डा का सर्वनाश भी उसने करडाला, परन्तु महाराष्ट्र-राज्य को वह कोई हानि न पहुँचा सका। औरंगज़ेब ने स्वयं इस बात को माना है, कि मेरी सेना १६ वर्षों तक शिवाजी से लड़ती रही, परन्तु हानि के स्थान पर सदैव उनकी धन-वृद्धि ही होती रही। इन बातों से पता चलता है, कि शिवाजी अपनी शक्ति को इस प्रकार उपयोग में लाते थे, कि महाराष्ट्र-राज्य स्थायी रूप से स्थिर हो।

स्थल-शक्ति को दृढ़ रखने के लिए उनके पास उपयुक्त सैन्य बल था। उनके पास शूरवीर, कार्यदक्ष और स्वामि-भक्त सेनानी थे, परन्तु शक्ति को स्थिर रूप से रखने के लिए नौ-शक्ति की भी आवश्यकता होती है। जिस राज्य की एक सीमा समुद्र-तट से मिली हुई हो, उसके लिए दृढ़ नाविक शक्ति का रखना अत्यावश्यक है। इसके सिवा जिसके नौ-शक्ति नहीं है, उसके राज्य का एक अंग अति निर्बल रहता है। शिवाजी इस बात को समझ गये थे, अतएव उन्होंने नौ-शक्ति भी स्थापित की। इस नौ-शक्ति से वे बड़े-बड़े कार्य्य साधते थे। इसी से समुद्र-तटस्थ राज्य की रक्षा होती थी। कभी-कभी इस शक्ति के द्वारा मक्का जाने वाले यात्री भी लूट लिए जाते थे। सन् १६६२ में जल-पथ द्वारा युद्धारम्भ किया गया था। इस समय इनके पास युद्धोपयोगी अठासी जहाज़ थे। इन के सिवा पचास हज़ार रणतरी भी बनवाई थीं। जहाज़ी सेना की संख्या प्रायः चार या पाँच हज़ार के लगभग थी। इस सेना

द्वारा दो बार चढ़ाई की गई थी। इन दोनों चढ़ाइयों में उनको बहुत-सा धन प्राप्त हुआ था। इस शक्ति का प्रधान एडमिरल 'दरयासुरंग' था। शिवाजी को जल और स्थल-शक्ति का पूर्ण ध्यान रहता था। वे अपने दोनों अङ्गों को पुष्ट करना आवश्यक समझते थे। शक्ति-प्रसारण में उनका यह ध्यान सदा रहता था, कि ऐसी शक्ति स्थापित की जाय, जो भविष्य में भी क़ायम रह सके, और भावी सन्तान उस शक्ति को उचित उपयोग में लाकर अधिक शक्ति-शाली राष्ट्र की वृद्धि कर सके।

---

## अठारहवाँ परिच्छेद

# शासन-प्रणाली

जितनी भूमि महाराज शिवाजी के अधिकार में थी, वह कई प्रकार के विभागों में विभक्त थी। प्रथम पर्वतीय भाग—इस में प्रायः पर्वतीय दुर्ग थे, जिनका शासन एक विशेष रूप से होता था। द्वितीय सम-भू-भाग—जो दो भागों में विभाजित था (१) 'महाल' और (२) 'प्रान्त'। यह सब भूमि "स्वराज्य" कहलाती थी, क्योंकि वह उनकी ख़ास अमलदारी में थी। इसके सिवा जो इलाक़ा मुग़लों के राज्य में था, वह शिवाजी को 'चौथ' या 'सरदेशमुखी' देता था, और वह "मुग़लिया" कहलाता था *। इन तीनों प्रकार के इलाक़ों का शासन भिन्न-भिन्न प्रकार से होता था, परन्तु साम्राज्य का प्रबन्ध एक विशेष सभा द्वारा होता था, जिसका नाम 'अष्ट-प्रधान' था। महाराज शिवाजी ने अपनी शासन-प्रणाली के आठ भाग कर डाले थे, और प्रत्येक भाग के प्रबन्ध के लिए उन्होंने एक-एक प्रधान पदाधिकारी नियुक्त किया था। इन्हीं प्रधान पदाधिकारी पुरुषों से मिलकर 'अष्टप्रधान' सभा बनती थी। इसी सभा द्वारा शासन-कार्य होता था। प्रत्येक की उपाधि भिन्न

---

* कदाचित् गोलकुण्डा और बीजापुर के सम्बन्ध में भी यही होगा।

होती थीः-(१) पेशवा-जो प्रधान पदाधिकारी इस उपाधि से विभूषित किया जाता था, वह राजमन्त्री होता था। दरबार में 'पेशवा' सिंहासन की दाईं ओर बैठते थे। (२) सेनापति— शिवाजी के राज्यकाल के पूर्व इसका नाम 'सरनोवत' होता था, परन्तु महाराज ने उस नाम को परवर्तित कर 'सेनापति' रख दिया। इनके ऊपर समस्त सेना का भार था। ये दरबार में बाईं ओर प्रथम बैठते थे। (३) पन्त अमात्य—ये कोषाध्यक्ष होते थे और पेशवा के बाद बैठते थे। इन्हीं के नीचे (४) पन्त सचिव, जिनका काम कोष-निरीक्षण था, बैठते थे। इनके बाद (५) मन्त्री—महाराज के प्राईवेट सेक्रेटरी—का आसन होता था। अब बाईं ओर (६) परराष्ट्र-सचिव—सुमन्त—बैठते थे। सेनापति के बाद इनका आसन था। इनके पश्चात् (७) पंडितराव—का आसन था। इनका काम शास्त्रों से धार्मिक व्यवस्था को प्रमाणित कर दिखलाना होता था। कोई-कोई इनको न्यायशास्त्री के नाम से भी सम्बोधित करते थे, क्योंकि न्यायालय में भी इनको शास्त्रीय प्रमाण देने पड़ते थे। (८) न्यायाधीश—का आसन पंडितराव के पास लगता था, और ये चीफ़ जस्टिस थे।

हम पीछे लिख आये हैं, कि शिवाजी का राज्य पर्वतीय 'दुर्गों' 'प्रांतों' और 'महालों' में विभक्त था। महाराज दुर्गों की उपयोगिता को ख़ूब समझते थे। दुर्गों की रक्षा का उनको पूरा ध्यान रहता था। उनके लिये वे धन का कदापि लोभ नहीं करते थे। उनके पास प्रायः २८० दुर्ग थे। प्रत्येक दुर्ग एक मराठा हवल-

दार के अधीन रहता था। इस हवलदार के कुछ सहायक रहते थे, जिन पर प्रत्येक दीवार का रक्षण-भार रहता था। प्रत्येक दुर्ग में एक उच्च कुलोद्भव ब्राह्मण और एक प्रभु भी रहते थे। धन और आय-व्यय सम्बन्धी काम ब्राह्मण के सुपुर्द रहते थे। प्रभु के अधिकार में अन्न-कोष का प्रबन्ध रहता था। दुर्गों के नीचे जो जंगल होता था, उसका प्रबन्ध अन्य जाति वालों द्वारा होता था। दुर्ग की अवस्थानुसार उसमें सेना रक्खी जाती थी।

महाराज शिवाजी का राज्य १४ प्रांतों में विभाजित था। उन १४ प्रान्तों के नाम यह हैं:—(१) मावल—जिसमें वर्त्तमान मावल, सासवद, जूनार, और खेद के ताल्लुकेदार सम्मिलित थे। (२) सितारा—जिसमें बाई, सितारा, और कराद के ताल्लुके थे। (३) पन्हाल (कोल्हापुर का पश्चिमी प्रदेश) (४) दक्षिणी कोकण (वर्त्तमान रत्नागिरि प्रदेश) (५) थाना (उत्तरी कोकण) (६) त्रिम्बक (७) बागलान ( उक्त दोनों प्रान्त वर्त्तमान नासिक ) (८) वाणगढ़ ( वर्त्तमान धारवार ) (९) बदनौर (१०) कोल्हर (११) श्रीरङ्गपट्टन ( उक्त तीनों वर्त्तमान मैसोर ) (१२) करनाटक (१३) वीलोर ( अरकाट प्रदेश ) (१४) तञ्जौर। इस प्रकार से चौदह प्रान्त थे। हम अभी लिख आए हैं, कि महाराज शिवाजी के राज्य में प्रायः २८० दुर्ग थे। महाराज शिवाजी ने उन दुर्गों को प्रांतों में बाँट दिया था, जिससे प्रान्तों की पूर्ण रक्षा होती थी। प्रान्त महालो में और महाल ग्रामों में विभक्त थे।

प्रत्येक प्रांत एक सूबेदार के अधीन रहता था। कर और दंड सम्बन्धी शासन उसी के अधिकार में रहता था। धन आदि के मुक़द्दमे भी—जो उस समय बहुत कम होते थे—उसी के पास आते थे। वह उनको ग्राम-पंचायतों के सुपुर्द कर देता था। प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य अष्टप्रधान सभा द्वारा संचालित होता था, और उसी के द्वारा ये सूबेदार और अन्य पदाधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

राज्य-कर के सम्बन्ध में महाराज शिवाजी ने बड़ा ही अच्छा प्रबन्ध किया था। यह प्रबन्ध बहुत कुछ विख्यात भूमि-प्रबन्धक राजा टोडरमल के प्रबन्ध से मिलता-जुलता था। इस प्रबन्ध के पूर्व भूमि-कर प्राप्त करने वाले दक्षिण में काश्तकारों से अधिक धन वसूल करते थे, और कदाचित् वसूल किए हुए धन में से आधा धन राज्य-कोष में जमा करते थे। कृषकों की कहीं सुनाई भी नहीं होती थी। भूमि-कर वसूल करनेवाले बड़ा अत्याचार करते थे, इसलिए कभी-कभी इन अत्याचारों के कारण दङ्गा-फ़िसाद हो जाता था, और जानें भी जाती थीं। शिवाजी ने इन सब बातों पर विचार कर नया प्रबन्ध किया। भूमि-कर वसूल करने वाले प्रायः जमींदार होते थे। शिवाजी ने यह 'काम विशदर'* के सुपुर्द किया। इनका वेतन भी सरकार से नियत कर दिया गया। इनका

* इस शब्द का शुद्ध रूप ज्ञात नहीं हो सका, कदाचित् कार्य विशारद का अपभ्रंश हो। ले०

यह काम था, कि उपज को देखकर यह यथायोग्य भूमि-कर लगा दें, और पश्चात् धन-स्वरूप में उसको वसूल करलें। भूमि-कर नियत करने के पूर्व खेत अच्छी तरह से नाप लिये जाते थे, और रजिस्टरों में लिख लिये जाते थे। यदि कृषक अन्न-स्वरूप में कर देते थे, तो वह उपज के पाँच में दो हिस्सों से अधिक नहीं लिया जाता था। भूमि-कर वसूल करने वाला उस अन्न को बेच डालता था, और धन को राजकोष में भेज देता था। दैवी कोप के समय कृषकों को तगाई (तक़ावी) दी जाती थी, जिसके वसूल करने में उनको कष्ट नहीं दिया जाता था।

शिवाजी के राज्य में ज़मींदार तो थे, परन्तु जागीरदार नहीं थे। जागीर-प्रणाली को उन्होंने तोड़ दिया था। क्षुद्र कर्म्मचारी से पेशवा तक, सब को मासिक वेतन मिलता था। जिस राज्य में जागीरदार होते थे, उस राज्य की मूल निर्बल हो जाती थी। जागीरदार और उनके वंशज जब शक्तिशाली हो जाते थे, तब वे बड़ा उत्पात मचाते थे, और उसका फल यह निकलता था, कि राजा बड़ी आपत्ति में पड़ जाता था। उस समय जागीरदारों को अपने राजा की सहायता के लिये सेना रखनी पड़ती थी। किसी जागीरदार ने देखा, कि राजा निर्बल है, तो वह अपनी सेना की सहायता से राजा को दबाने का यत्न करता। महाराज इस बात को समझते थे, अतएव उन्होंने इस प्रथा को तोड़ दिया। दूरदर्शिता से उन्होंने ज़मींदारों को भी अपनी रक्षा के लिए

दुर्गादि बनाने को आज्ञा न दी थी। जागीरें दी भी जाती थीं, तो सर्वसाधारण के काम के लिए—जैसे मन्दिरादि के निमित्त। इन जागीरों की रक्षा सरकार द्वारा होती थी। पुजारी इत्यादि को सेना रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। कर्मचारी परम्परागत भी नहीं होते थे। यह बात नहीं थी, कि पेशवा का पुत्र भी उनकी मृत्यु के अनन्तर पेशवा के पद को प्राप्त करे। उपर्युक्त पुरुष स्थानापन्न किये जाते थे।

पैदल सेना में दस सिपाहियों के ऊपर एक 'नायक' रहता था, और ऐसे पांच नायकों के ऊपर एक 'हवलदार' होता था। दो हवलदारों का आधिपत्य एक 'जुमलेदार' के पास होता था, और दस जुमलेदार एक 'हज़ारी' के प्रभुत्व में रहते थे। इस प्रकार एक हज़ार सिपाहियों के ऊपर एक 'हज़ारी' होता था। सात हज़ार सिपाहियों का संचालक 'सरनोबत' कहलाता था। सवारों की सेना दो प्रकार की थी; एक 'बारगीर' और दूसरी 'सिलीदार'। पच्चीस सवारों के ऊपर एक 'हवलदार' और पांच हवलदारों के ऊपर एक 'जुमलेदार' रहता था। दस जुमलेदारों के ऊपर एक 'हज़ारी' और पांच हज़ारियों के ऊपर एक 'पंज हज़ारी' होता था। पंजहज़ारी के ऊपर एक 'सरनोबत' रहता था। उच्च कर्मचारियों के पास एक ब्राह्मण 'सबनीस' और एक 'कारकुन' प्रभु रहते थे। इनका काम कमसरियट से सम्बन्ध रखता था। सवारों के हज़ारी को एक हज़ार हान्स (एक प्रकार का सिक्का) मिलते थे, और पंज हज़ारी को दो हज़ार। पैदल के हज़ारी को

पांच सौ मिलते थे। नीचे के अधिकारियों का वेतन योग्यता के अनुसार होता था। वर्ष के आठ महीनों तक सिपाहियों का वेतन 'चौथ' और 'सरदेशमुखी' द्वारा दिया जाता था। जब कोई नवीन सैनिक भर्ती होने के लिए आता था, तब उसको एक सैनिक से सिफ़ारिश करानी पड़ती थी। यह सिफ़ारिश इस बात की होती थी, कि यह प्रार्थी इस विश्वास के योग्य है, कि यह लूट-मार में से कुछ चुरा नहीं लेगा।

शिवाजी के यहाँ गुप्तचरों का भी एक विभाग था। इसमें वे ही मनुष्य रहते थे, जो अधिक विश्वास के योग्य और सुचतुर होते थे। उनका काम यह रहता था, कि शत्रु के सम्बन्ध में समाचार दिया करें। ये लोग अपने कार्य्य में इतने दक्ष थे, कि शिवाजी को यथा समय सच्चा हाल ज्ञात हो जाता था। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है, कि शिवाजी महाराज के यहाँ रिश्वतख़ोरों की अधिकता नहीं थी।

———

## उन्नीसवाँ परिच्छेद

# सिंहावलोकन

भारत के इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी ऐतिहासिक पुरुषों से परिपूर्ण है। इसी समय में हिन्दूपति राणा राजसिंह हुए, जिनकी राजनीति के सामने औरङ्गज़ेब-सरीखे कुटिल राज-नीति-विशारदों को सिर झुकाना पड़ा। महाराज जयसिंह और यशवन्तसिंह का भी यही समय था। गुरु गोविन्दसिंह भी इसी शताब्दी में हुए थे। गुरु तेगबहादुर ने इसी शताब्दी में 'सर दिया पर सार न दिया' था। प्रसिद्ध राठौर दुर्गादास ने ऐसे ही दुष्कर समय में मारवाड़ का नाम रक्खा था। इन पुरुष-सिंहों पर विचार कर हम कह सकते हैं, कि सत्रहवीं शताब्दी में भारत-माता की गोद में अनेक वीर और राजनीतिज्ञ सन्तानें खेली थीं। इतने हिन्दू वीरों के होते हुए भी भारत की क्या अवस्था थी? इसका उत्तर भूषण के निम्नलिखित पद्य से मिलता है:—

देवल गिरावते फिरावते निशान अली,
ऐसे डूबे राव राने सबी गए लबकी।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप,
आपनी ही बार सब मारि गए दबकी।

पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी।
कासी हू कि कला जाती मथुरा मसीत होती,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी।"*

इस कविता में जो भाव दिखलाया गया है, वह सर्वथा सत्य है। उस समय भारत की यही दशा थी। इस कवित्त के अन्त में कहा गया है, "शिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी" यह भी बिलकुल ठीक है। वास्तव में यदि उस समय शिवाजी सरीखे वीर पुरुष न हुए होते, तो कदाचित् 'चारों वर्ण धर्म्म छोड़ि कलमा निमाज पढ़ि' मुसलमान हो जाते, क्योंकि औरङ्गजेब उस समय घोर अत्याचार कर रहा था। यथाः—

कुम्भकन्न असुर औतारी अवरंगजेब,
कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रबकी।
खोदि डारे देवी देव सहर महल्ला बाँके,
लाखन तुरुक कीन्हे छूटि गई तबकी॥

अब आप जान सकते हैं, कि हिन्दू धर्म की उस समय क्या अवस्था थी? इधर हिन्दू धर्म की यह अवस्था थी, और उधर औरङ्गजेब की सर्वग्रासी नीति भारतवासियों का सर्वनाश कर रही थी। सर्वनाश इसलिये कर रही थी, कि राजा जयसिंह और यशवन्तसिंह आदि बने ही रहे, और औरङ्गजेब ने विश्व-

---

* पं० हरिशंकर शर्मा ने भूषणकृत शिवा बावनी की प्रशंसनीय टीका की है।

नाथ का ध्वंस कर उन्हीं के पास मसजिद बनवा दी! इन दोनों की उपस्थित में ही 'जज़िया' लगा दिया गया था! इनके वीरत्व में किंचित् सन्देह नहीं है; प्रतिज्ञा-पालन में ये अचल थे, परन्तु नहीं मालूम क्यों ये वीर-पुङ्गव औरङ्गज़ेब के चंगुल में फँसे रह कर हिन्दू धर्म पर कुठार चलता देखते रहे। कदाचित् प्रतिज्ञा-पालन ही कारण रहा हो।

शिवाजी ने औरङ्गज़ेब के कपट-पाश को छिन्न-भिन्न कर दिया था। शिवाजी की जीवन घटनाओं का वर्णन हम पीछे कर आये हैं। अब हमको उनके चरित्र की आलोचना करनी है। शिवाजी वीर-कुल चूड़ामणि थे। उनके समय के वीरों ने उनको पूर्ण मान दिया था, परन्तु खेद इस बात का है, कि विदेशी इतिहासकारों ने उनका वीरोचित सम्मान नहीं किया है। मान-सम्मान करना तो दूर, एक साहब लिखते हैं:--

—"for craft and trickery he was reckoned a sharp son of the Devil, the Father of Fraud" कोई इनको 'लुटेरा' कोई इनको 'शैतान का पुत्र' कोई 'काफ़िर' व 'जहन्नुमरफ़्त' 'पहाड़ी चूहा' व 'सग' आदिक अपशब्दों से अलंकृत कर गये हैं। इसका कारण यह है, कि शिवाजी का चरित्र-चित्रण मुख्यतः मुसलमानी पुस्तकों के आधार पर किया गया है। कदाचित् मराठा इतिहासकारों के ऊपर उनका पूर्ण विश्वास नहीं था।

हाँ इसमें सन्देह नहीं, कि शिवाजी की तुलना यूरोप के

ऐतिहासिक वीरों से नहीं हो सकती है। यूरोप में जगद्विजेता सिकन्दर हुए हैं, परन्तु शिवाजी उनकी बराबरी के नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने स्वजन-बान्धवों की हत्या कर अपने को कलुषित नहीं किया था। शिवाजी जूलियस सीज़र की समता के भी नहीं, क्योंकि उन्हों ने अपनी सहधर्मिणी के साथ कभी पाशविक बर्त्ताव नहीं किया, और न उनमें उतना गर्व और दम्भ था। शिवाजी नैपोलियन भी नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन्होंने "अदम्भ-जनक हत्याएँ" नहीं की थीं, और न उन्हों ने जीते हुए राज्य को अपने भाई-भतीजों के हाथ में दे दिया था। यूरोपमें ऐसे बहुत कम वीर हुए हैं, जिनका 'पबलिक' और 'प्राइवेट' जीवन एकसा रहा हो, इसी लिए उनकी तुलना महाराष्ट्रवीर शिवाजी से नहीं हो सकती।

महाराज शिवाजी दाएँ हाथ में धर्म्म की डोर और बाएँ हाथ में राजनीति की डोर लेकर कार्य्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे। धर्म को वे सदा आगे रखते थे। उनको यह सर्वदा ध्यान रहता था, कि कहीं राजनीति से धर्म लुप्त न हो जाय। शिवाजी की प्राथमिक शिक्षा धर्म-शिक्षा थी। माता जीजीबाई को उसी शिक्षा द्वारा भारत का उत्थान कराना अभीष्ट था। धर्म की शिक्षा का प्रभाव उनपर इतना पड़ गया था, कि बाल्यावस्था ही से वे अत्याचारी मुसलमानों से घृणा करने लगे थे। उनके बाल्यकाल की एक बात प्रसिद्ध है, उससे उनके भविष्य जीवन का पता लगता है। बीजापुर के दरबार में मुरारपन्त एक उच्चपदस्थ कर्मचारी

थ। शाहजी से उनका मेल-जोल था। एक दिन मुरारपन्त ने शिवाजी से कहा—'चलो तुम्हें शाह से मिला लावें।' मुरारपन्त ने सोचा, कि बालक चलने में प्रसन्नता प्रकट करेगा, परन्तु उनको बड़ा आश्चर्य हुआ, जब शिवाजी ने जवाब में कहा—"हम हिन्दू हैं, बादशाह मुसलमान है, इसलिए वह महा नीच है। मैं ऐसे मनुष्य से मिलना नहीं चाहता हूँ। ऐसे मनुष्य को छूना भी मैं महा अपकर्म समझता हूँ, जो गौ और ब्राह्मणों का बध कराता हो।" मुरारपन्त आश्चर्य में पड़ गये। कुछ रुक कर शिवाजी फिर बोले—"मैं ऐसे मनुष्य को बादशाह नहीं मानता सलाम करना तो दूर रहा, मन में आता है, कि उसका गला काट डालूँ।" मुरारपन्त के होश उड़ गए। उन्होंने शाहजी से यह सब हाल कहा, तब वे शिवाजी को समझा बुझा कर दरबार में लेगए। शिवाजी वहाँ गए, परन्तु उन्हों ने सलाम नहीं किया। पन्तजी ने यह कह कर, कि यह दरबार के नियमों से अपरिचित है, शाह को अप्रसन्न न होने दिया। शिवाजी ने वहाँ से लौटकर वस्त्र बदले और स्नान किया।

बालकपन में मुसलमानों के प्रति इतनी घृणा का होना आश्चर्य है। ख़ासकर उस के हृदय में, जिसके पिता, पितामह और मातामह, इत्यादि यवन-राज्य में उच्च कर्मचारी रहे हों। माता की शिक्षा बड़ी प्रबल होती है। माता ने मुसलमानों का अत्याचार देखा था, इस से उनके हृदय में असह्य वेदना हुई थी। वेदना से मर्माहत हो उन्होंने शिवाजी के हृदय पर उस

भाव को अङ्कित किया था। माता अपनी सन्तान के भविष्य को बहुत कुछ सुधार सकती है। वीर नैपोलियन की भावी उन्नति उनकी माता ही के कारण हुई थी, जिसका उल्लेख स्वयं नैपोलियन ने किया है। सिकन्दर का भी वही हाल था। शिवाजी क्या थे, और अन्त में क्या हो गये! इसका आदि कारण उन की माता जीजीबाई ही थीं।

शिवाजी के बाल्यकाल का बहुत बड़ा भाग वीर-कथाओं के सुनने में व्यतीत हुआ था। उन्होंने 'रावण' और 'वेणु'* आदि के अत्याचारों के उपाख्यानों को सुना था। उन्होंने पाण्डवों की कथा सुनी थी। वीर पुरुषों के चरित्र उनके कानों में पड़े थे, अतएव उनके हृदय में भी वीरता के कार्य करने की लालसा उत्पन्न हुई थी। स्वदेश की दशा का वर्णन सुनकर 'स्वदेश-रक्षा' का भाव उनके हृदय में उत्पन्न हुआ था। इसी बीच में दादा जी कोणदेव की शिक्षा ने उन पर अद्भुत प्रभाव डाला। अपने देश की दुरवस्था का पूर्ण परिचय शिवाजी ने उनके द्वारा प्राप्त किया। जिस समय शिवाजी उनके साथ जागीर में घूमने निकलते, दादाजी उनको देश की शोचनीय अवस्था दिखलाते थे। होनहार बालक इन सबको देखता था। स्वदेश की शोचनीय अवस्था को देखकर उनके आँसू निकल आते थे। अन्त में उन्होंने कर्त्तव्य-पथ पर पैर रक्खा।

---

* यदि राजा वेणु का विस्तृत हाल जानना चाहते हैं, तो पं० बदरीनाथ भट्ट लिखित 'वेन-चरित नाटक' पढ़िये।

अपने कार्यारम्भ के समय से ही उन्होंने 'राजनैतिकधर्म' का अनुसरण किया। प्रेमभाव द्वारा उन्होंने मावलियों को अपनी ओर कर लिया था। उन्हीं को लेकर वे कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। महाराज में प्रेमभाव स्थापन करने की अद्भुत शक्ति थी। जो उनसे एकबार अच्छी तरह बात कर लेता, वह जन्मान्तर के लिये उनका भक्त बन जाता था। नैपोलियन के सैनिक उसको बड़े प्रेम से देखते थे, उसके लिये वे अपने प्राणों को तुच्छ समझते थे, परन्तु शिवाजी के सैनिक उनसे भी कुछ बढ़े-चढ़े थे। इनमें प्रेम और प्रभुभक्ति का अद्भुत मिश्रण था। शिवाजी यदि अपने किसी सैनिक को डाट या फटकार देते, तो भी वह बुरा न मानता था।

आत्मसंयमी होना बड़ा कठिन होता है। प्रायः प्रभुत्व पाकर सब ही इस व्रत को विसार देते हैं। परन्तु शिवाजी का सदाचार और संयम प्रशंसनीय है। मुसलमान बादशाहों में अकबरशाह महान् शक्तिशाली सम्राट् हुए हैं। उन्होंने प्रायः समस्त भारत को अपने शासन-पाश में बाँध लिया था, परन्तु आत्मसंयम वे भी न कर सके! 'नौ रोज़' उनके कुत्सित कार्यों का उदाहरण है। इतिहास ने शाहजहाँ को भी सर्वप्रिय सम्राट् माना है, परन्तु इस संयम में वे भी कच्चे थे। संयम को बालाए ताक़ रख कर वे तो न चखने योग्य फल के आस्वादन के लिये तत्पर हो गये थे। शिवाजी पूर्ण आत्मसंयमी थे। जिस समय महाराष्ट्रों ने कल्याण-दुर्ग पर अधिकार किया था, उस समय

नीलपन्त ने दुर्गाध्यक्ष की रूपवती कन्या * को बन्दी कर लिया। यह बाला अनुपम सुन्दरी थी। नीलपन्त ने समझा था, कि इसको शिवाजी की भेंट कर मैं उनका विशेष कृपापात्र बनूंगा। दरबार में पहुँच पन्तजी ने उसको शिवाजी के आगे उपस्थित किया। शिवाजी ने सुन्दरी को देखकर पन्त से पूछा—'यह कौन है?' पन्तजी ने कहा—'यह मौलाना साहब की कन्या है, और मैं इसको श्रीमान् के लिये लाया हूँ।' इतना सुनते ही शिवाजी की निगाह बदल गई। उन्होंने गम्भीर भाव धारण कर कहा—"पन्तजी! क्या मुझको विषयान्ध कामी समझ कर इस भेंट को मेरे पास लाये हो? राजसत्ता प्राप्त कर क्या मैं स्त्रियों के भोग में लिप्त रहूँगा? सरदार, तुम्हारा हृदय मलिन और कलुषित हो गया है। याद रक्खो, विषयी पुरुष विजेता नहीं हो सकता। यदि हम पर-स्त्री ग्रहण करने लगेंगे, तो हम से राज-कार्य्य नहीं हो सकेगा। हमारा यह धर्म नहीं है, कि स्त्रियों पर अत्याचार करें। तुम्हें अपने कर्त्तव्य का विचार नहीं है। यह बाला मेरी भगिनी के तुल्य है।" पन्त लज्जित हो गये, पीछे वह यवन बाला उसके बाप के पास भेज दी गई। शिवाजी आजन्म स्त्रियों का सम्मान करते रहे। अफ़ज़लख़ां को जब उन्होंने मारा था, तब उनके 'हरम' को अपने अधिकार में नहीं किया था, वरन् उसको सादर बीजापुर भिजवा दिया था। स्त्रियों पर अत्याचार करना, तो उन्होंने—मुसलमान बादशाहों से—सीखा ही न था। किसी 'पद्मिनी' के लिये

* किसी-किसी ने इसको दुर्गाध्यक्ष की बधू लिखा है। ले०

उन्होंने कभी चढ़ाई नहीं की थी। उनके आक्रमण हिन्दू-राज्य-स्थापन के लिये होते थे।

राज्य-स्थापन में सबसे अधिक साहस की आवश्यकता है। विना साहस के राज्य-स्थापन नहीं हो सकता। सीज़र ने साहस से ही 'रिउविकन' को पार कर रोम साम्राज्य का अधिकार प्राप्त किया था। हज़ारों गोलों के बीच में अकेले झण्डा लेकर नैपोलियन ने साहस का परिचय दिया था, जिसके फल स्वरूप उनको वस्तुतः यूरोप का 'राज्य-मुकुट' प्राप्त हुआ था। शिवाजी में भी उस साहस की कमी न थी। पच्चीस मावलियों से शायस्ताख़ाँ को जीतना शिवाजी का ही साहस था। रुद्रमण्डल की विजय उनके साहस का ही फल था। उनके साहस में एक अद्भुत शक्ति मिश्रित थी, वह शक्ति थी 'धैर्य्य'। कठिन से कठिन समय पड़ने पर भी शिवाजी धैर्य्यच्युत नहीं होते थे। राजा जयसिंह का विश्वास कर महाराज दिल्ली गये थे। वहाँ औरङ्गज़ेब ने उन को बन्दी कर लिया। शिवाजी ने वहाँ धैर्य्य से काम लिया, जिसके कारण वे सकुशल रायगढ़ लौट आये।

'क्षमा वीरस्य भूषणम्' उनका मूल मन्त्र था। विजित के ऊपर दयाभाव दिखाना वे ख़ूब जानते थे। इतना ही नहीं, किन्तु वे महानुभावता का भी पूर्ण परिचय देते थे। मुसलमानों का परम प्रिय 'क़त्ल आम' इनके समय में नहीं होता था, और न रूसियों की तरह युद्ध-क़ैदी मरवा डाले जाते थे। तैमूर की तरह उन्होंने लाखों बन्दियों का शिरोच्छेदन भी कभी नहीं कराया था। सिंहगढ़

विजय में जिस समय तानाजी मारे गए थे, उस समय वे नादिरशाही करा सकते थे; परन्तु नहीं, मित्र को खोकर भी उन्होंने दयालुता का ही परिचय दिया था । महानुभावता का उत्कृष्ट उदाहरण हमें उनके बिलारी-दुर्ग-विजय के समय मिलता है। मलबाई देशाइन नाम की एक विधवा वीराङ्गना उक्त दुर्ग की अधिकारिणी थी। शिवाजी की सेना ने उस पर आक्रमण किया। सत्ताईस दिन तक शिवाजी की सेना उसकी शक्ति को न दबा सकी। अट्ठाईसवें दिन मावलियों ने उस पर अधिकार कर लिया। उस समय वीराङ्गना ने शोक प्रकट किया, और कहा— "अबलाओं पर विजय प्राप्त करना क्या वीरों का उत्कृष्ट कर्म्म है ?" महाराज ने जब इस बात को सुना उनका हृदय गद्गद् हो गया, और उन्हों ने सम्मान सहित दुर्ग उसको लौटा दिया। जहाँ शिवाजी की राजपताका फहराने लगी थी, वहीं पुनः बिलारी की पताका उड़ने लगी।

हिन्दुओं से युद्ध करने में शिवाजी का हृदय काँप उठता था। अपने जाति-भाइयों का रक्त बहाना उनको कदापि अभीष्ट नहीं था। हिन्दू-दुर्गाध्यक्षों से युद्ध करने के पूर्व वे उनको समझाते थे, परन्तु जब वे न मानते, तो उन पर फिर प्रचण्ड रूप से आक्रमण होता था। स्वदेशद्रोहियों से उनको बड़ी घृणा थी। चन्द्रराव मोरे इसी घृणा के कारण मारा गया था। विश्वासघात करना भी उनको बिलकुल नापसन्द था। जिस समय रघुबल्लाल ने बाजी को मारा था, उस समय महाराज उन से बहुत ही

अप्रसन्न हुए थे, यहाँ तक कि उनको हीन पद देकर मुसलमान सेना का सेनानी बनाया था। न्याय पर तो वे इतने आरूढ़ थे, कि अन्यायी को कठिन से भी कठिन दण्ड देते थे। एक वार उनके एक सेनापति ने रिश्वत लेकर बन्दियों को छोड़ दिया था। शिवाजी को यह बात मालूम हो गई। उन्हों ने उसको इतना तिरस्कृत किया, कि वह वहाँ से चला गया। उन्होंने अपने पुत्र शम्भाजी को भी उसके अधर्म्म-कार्य पर दंड दिया था। उस का यह दोष था, कि उसका एक ब्रह्मण-बाला से अनुचित सम्बन्ध था। न्याय करने में वे ब्रूटस् से भी बढ़े-चढ़े थे।

मुसलमानों पर भी वे कभी अन्याय नहीं करते थे। उनका किसी भी दूसरे मत से विरोध न था। मुसलमानों से उनका विरोध राज्य के लिए था। उन की आज्ञा थी, कि मसजिदों को कोई ज़रा भी हानि न पहुँचाये। उनके हाथों में यदि कभी क़ुरान पड़ जाती, तो वे उसकी औरंगज़ेबी गति नही बनाते थे, और न कभी क़ुरान से हम्माम गरम करते थे। मुसलमानों पर धार्मिक अत्याचार न करते हुए, वे गो-ब्राह्मण की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहते थे। देश को मुसलमानों से छीन लेना वे न्याय-संगत समझते थे।

जो लोग शिवाजी को लुटेरा बतलाते हैं, उनको समझना चाहिए, कि इस तरह से तो पर-राज्य पर चढ़ाई करने वाला प्रत्येक राजा लुटेरा कहा जा सकता है। सिकन्दर और डाकू

की बातचीत जिन्होंने पढ़ी है, उनको ज्ञात हो सकता है, कि उस डाकू की दृष्टि में जगद्विजयी सिकन्दर भी 'लुटेरा' और 'डाकू' था। वास्तव में किसी राजा का अपने शत्रु के धन को छीन लेना डाकूपन नहीं है। इतिहास में शिवाजी से बढ़ कर लुटेरे हुए हैं, परन्तु उनको किसी ने भी लुटेरा न बतलाया। महमूद गज़नवी, शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी और नादिरशाह को किसी ने भी लुटेरा न कहा। ऐतिहासिक लुटेरे तो धन लूट कर अपने कोष भरते थे, परन्तु बेचारे शिवाजी उस लूट से ग़रीबों और काश्तकारों की रक्षा करते थे।

'लुटेरे' शिवाजी से उनके सब देश-बान्धव प्रसन्न थे। उनके नौकर और सम्बन्धी उनसे पूर्ण सन्तुष्ट रहते थे। जो लुटेरे न होकर शक्तिशाली सम्राट् हो चुके हैं, उनके भी भाग्य ऐसे नहीं थे। "क़िबले की ठौर बाप बादशाह शाहजहाँ, ताको क़ैद किया मानो मक्के आग लाई है" यह औरंगज़ेब की पितृभक्ति का नमूना है। परन्तु शिवाजी की पितृभक्ति अनुकरणीय है, जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है। औरङ्गज़ेब की तरह भाइयों के साथ विश्वासघात कर उन्होंने उनका बध नहीं किया था। एक वार उनके सौतेले भाई बङ्कजी ने शिवाजी पर चढ़ाई करना विचारा, परन्तु शिवाजी के सदुपदेश से वह शान्त होगये थे। शिवाजी मितभाषी थे। वे निरर्थक बात करना नापसन्द करते थे, अतएव उनको निकम्मे मुसाहिबों की भी आवश्यकता नहीं थी। उनके विचार सदा पवित्र रहते थे। अपनी दिनचर्या के

वे इतने पाबन्द थे, कि कोई काम क्यों न आ पड़े, वे नित्यकर्म्म अवश्य कर लेते; तब अन्य ओर ध्यान देते थे।

औरंगज़ेब ने, जो उनका चिरशत्रु था, उनकी मृत्यु के पश्चात् कहा था, कि 'वास्तव में शिवाजी एक वीर योद्धा था।' वीर पुरुष वह है, जिसकी प्रशंसा शत्रु भी करने लगें। विदेशी इतिहास-लेखकों और समालोचकों को औरंगज़ेब के उपर्युक्त शब्दों पर विचार करना चाहिये। शिवाजी के उज्ज्वल चरित्र में हम एक भी धब्बा नहीं पाते।

---

मुद्रक—सत्यपाल शर्मा, कान्ति प्रेस, माईथान—आगरा।